सिद्धयोग

2017

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

एक प्रति : 20/- द्विवार्षिक : 300/-

प्रकाशन तिथि : 01.07.2017

वर्ष : 50; अंक : 4
जूलाई 2017

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

ज्ञानी के लिए प्रारब्ध नहीं रह जाता

हे महामते! निरन्तर प्रयत्न करके आत्मा के स्वरूप को जानकर उसी के चिन्तन में अपना समय व्यतीत करो; समस्त प्रारब्ध कर्मों के भोगों को भोगते हुए तम्हें उद्विग्न नहीं होना चाहिए। आत्मज्ञान हो जाने पर भी प्रारब्ध स्वयं नहीं छोड़ता। परंतु जब तत्वज्ञान का उदय होता है, तब ज्ञानी की दृष्टि में प्रारब्ध कर्म का उसी प्रकार अभाव हो जाता है, जिस प्रकार स्वप्नलोक के देहादिक असत् होने के कारण जागने पर नहीं रह जाते। जन्मान्तर के किये हुए जो कर्म हैं, वे ही प्रारब्ध कहे गये हैं। परंतु ज्ञानी के लिए तो जन्मान्तर भी नहीं है। अतः उसके लिए भी प्रारब्ध नहीं रहता। जिस प्रकार स्वप्नकालीप देह देह नहीं होती, अध्यासमात्र होती है, उसी प्रकार यह जाग्रत्–काल का शरीर भी अध्यासमात्र है। अध्यस्त पदार्थ की उत्पत्ति कहाँ होती है। और जिसकी उत्पत्ति नहीं हुई, उसकी स्थिति कहाँ ! (जैसे रज्जु में सर्प का अध्यास होने पर रज्जु में सर्प नहीं पैदा होता और न वहाँ सर्प की स्थिति ही होती है) इस प्रपंच का उपादान कारण आत्मा है, जिस प्रकार मिट्टी के पात्रों का उपादान कारण मिट्टी है। वेदान्त के अनुसार यह प्रपंच अज्ञान के कारण आत्मा में भासता है ; यदि अज्ञान नष्ट हो जाय तो विश्व की विश्वता कहाँ रहेगी। जिस प्रकार भ्रम से मनुष्य रज्जुबुद्धि का त्याग करके उसे सर्पबुद्धि से ग्रहण करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष सत्य (आत्मा) का ज्ञान न होने के कारण प्रपंच को देखता है।

जब सामने रस्सी के टुकड़े को अच्छी तरह पहचान लेने पर जैसे उसमें प्रतीत होने वाला सर्परूप नहीं रह जाता, उसी प्रकार अधिष्ठानस्वरूप आत्मा का ज्ञान होने पर जब प्रपंच भी शून्यता को प्राप्त हो जाता है, तब देह भी प्रपंच रूप ही होने के कारण उसके साथ ही शून्यता में परिणत हो जाता है। उस अवस्था में प्रारब्ध की स्थिति कैसे रह सकती है। अज्ञानीजनों को समझाने के लिए प्रारब्ध की बात कही जाती है। तदनन्तर कालवश ही प्राब्ध के नष्ट हो जाने पर प्रणव और ब्रह्म की एकता के चिन्तन से नादरूप में साक्षात् ज्योतिर्मय, शिवस्वरूप परमात्मा का आविर्भाव होता है– ठीक वैसे ही, जिस प्रकार मेघ के दूर हो जाने पर सूर्यनारायण प्रकाशित हो उठते हैं। योगी सिद्धासन से बैठकर वैष्णवी मुद्रा धारण करके दाहिने कान के भीतर उठते हुए नाद (अनाहत ध्वनि) को सदा सुनता रहे। इस प्रकार अभ्यास में लाया हुआ नाद बाह्य ध्वनियों का आवृत कर लेता है। इस प्रकार एक पक्ष अर्थात् अकार को जीतकर दूसरे पक्ष उकार को जीते और क्रमशः सम्पूर्ण प्रणव पर विजय प्राप्त कर तुर्यपद अर्थात् आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त होता है।।1–11।।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष : 50
अंक : 4

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

जुलाई
2017

यन्मन्यसे वरेण्यं इन्द्र द्युक्षं तदाभर।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने।।
(ऋ. 5/36/2)

हे वैभव के कोश ! जिस धन को तुम मेरे लिए वरणोय, उपयुक्त समझो, वही धन तुम हमें दो। हम तुम्हारे उसी दान को प्राप्त करें जिससे कुत्सित नहीं, सुभग पूरण और पोषण होता हो।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रवन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ....

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	श्रीमद्भागवत में योग–परिचर्चा – डॉ.विजय सिंह	10
4.	गुफा से बातें करता हूँ – जगदीश राए बंसल	13
5.	योग–परिचर्चा – कृष्ण कुमार पाण्डेय	14
6.	योगक्षेमं वहाम्यहम् – श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा	18
7.	ईश्वर प्रणिधान अथवा भक्तियोग – श्री पूर्ण चन्द शास्त्री	21
8.	सौंफ और हल्दी – डॉ. गणेश नारायण चौहान	26
9.	योग सिद्धआश्रम पुरानी मंडी में विशाल योग शिविर आयोजन– हेमराज	31
10.	योग–आसन	34
11.	जड़ी– बूटी चिकित्सा – पं.लीलापत शर्मा	35
12.	दीप जलते रहे – डॉ. छोटे लाल दीक्षित	38
13.	आश्रम–समाचार	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विभूतिपाद की विभूतियाँ – २

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

भगवान पतंजलि देव ने अष्टांग योग का वर्णन किया, **यथा यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टापंगानि।**

किन्तु योग के इन आठ अंगों में यम नियम आसन प्राणायाम–प्रयाहार इन पाँचों की अपेक्षा धारणा–ध्यान समाधि अन्तरंग अंग हैं। किन्तु यह भी निर्जीव समाधि की अपेक्षा बहिरंग ही है। साधक ज्यों–ज्यों निरन्तर अभ्यास करता है। त्यों–त्यों उसके चित्त में विभिन्न प्रकार के परिणाम होते रहते हैं। जिस समय साधक योगी अपना अभ्यास आरम्भ करता है तो उसका चित्त जो अभी तक सर्वथिता में लगा था। वह एकाग्रता के रूप में बदल जाता है। यह उस साधक के चित्त का एकाग्रता परिणाम है। साधक के चित्त का सर्वार्थकता का ज्ञान शान्त हो जाता है और एकाग्रता का ज्ञान उदय हो जाता है। यही शान्तोदित प्रत्यय कहलाते हैं। इसी प्रकार से साधक का चित्त ज्योंही एकाग्रता परिणाम को खोकर समाधि परिणाम में परिवर्तित होता है। त्योंही योगी के चित्त का समाधि परिणाम कहलाता है। इसी प्रकार निरन्तर अभ्यास करने से समाधि परिणाम का आविर्भाव और निरोध परिणाम का आविर्भाव हो जाता है। इसी प्रकार परिणित होता हुआ चित्त समाधि की सब भूमिकाओं में धर्मी बन करके परिणित में आता रहता है। धर्मी का लक्षण भगवान पतंजलिदेव ने अपने योग दर्शन में इस प्रकार कहा है–

शान्तोदिता व्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी।

अर्थात्– धर्मी वह कहलाता है जो भूत–भविष्य–वर्तमान में बराबर अनुगमन करता रहे। उदाहरण के लिए, इस बात को ऐसे समझना चाहिए जैसे घट–पट आदि परिणामों के अन्दर धर्मी मिट्टी कायम रहती ही चली जाती है। उदाहरणार्थ इस प्रकार समझिये। जैसे–कुम्हार ने खोदकर कुछ मिट्टी ली और पानी मिलाकर उसका गोला तैयार कर लिया अब यहाँ पर मिट्टी धर्मी है और वह मिट्टी गोला रूप धर्म परिणाम में बदल गई। उस गोले को कुम्हार ने एक मटके के रूप में बदल दिया। अब वही मिट्टी जो गोला रूप धर्म परिणाम में परिवर्तित हुई थी। अब वह मटके के रूप में बदल गई यह उसी धर्मी मिट्टी का मटका रूप

धर्म परिणाम है।

मटका पका लिया गया फिर उसको तोड़–फोड़कर ठिक्कड़ बना लिया गया। मिट्टी घड़े में भी मौजूद थी और ठिक्कारों में भी, केवल उसके परिणामान्तर होते रहे। जब मिट्टी मटके के रूप में आई थी तब उसका नया मटका पुराना मटका कहकर अवस्था परिणाम था। लम्बे गले का मटका आदि–आदि लक्षण परिणाम था। इन तीनों परिणामों के अन्दर मिट्टी धर्मी रूप से अपनी जगह कायम रही उसमें कोई अन्तर नहीं आया चाहे वह मटका बनी कसोरा बनी ठीक कर बनी ठिक्कर टूट जाने के बाद मिट्टी का चूरण बन गया। मिट्टी वही मिट्टी रूप में आ गई। इस प्रकार से हमारे चित्त में एकाग्रता परिणाम समाधि परिणाम एवं निरोध आदि परिणाम हुए। धर्मी चित्त अपने विभिन्न परिणामों में अन्यान्य एकाग्रता आदि धर्मों के अन्दर परिवर्तित होता रहा। केवल मात्र निर्जीव समाधि के अन्दर जाकर जड़ चेतन की गाँठ टूट जाने पर आत्मा केवली भाव को प्राप्त हो जायेगा और चित्त उससे अलग होकर उसका गुणों में अवस्था हो जायेगा। चित्त का एक क्रम से दूसरे क्रम में बदल जाना ही परिणामान्तर का हेतु है। ज्यों–ज्यों साधक अपने अभ्यास को बढ़ाकर विवेक ज्ञान को निर्मल कर लेता है। तब उसके चित्त में सभी कुछ ग्रहण कर लेने की योग्यता बढ़ जाती है। वह जहाँ–जहाँ अपने चित्त को संयमित करता है वहाँ–वहाँ का ज्ञान तत्काल प्राप्त कर सकता है। अब योगी की इच्छा है कि वह अपने सधे हुए चित्त को कहाँ–कहाँ लगायेगा, उसे प्रकृति का कितना अध्ययन करना है। कितनी प्रकार की सिद्धियों को उपार्जित करना है। जिस प्रकार से एक अध्ययन करने वाले छात्र ने पढ़ते–पढ़ते अपने बुद्धि बल को इतना बढ़ा लिया है कि वह जिस विषय को पढ़ना आरम्भ करता है उसकी बुद्धि तत्काल ग्रहण कर लेती है और वह थोड़े से समय में उस विषय का भी विद्वान बन जाता है यदि वही विषय किसी अनपढ़ गँवार के सामने कहा जाए तो उसकी बुद्धि उस विषय को बिल्कुल भी ग्रहण न कर पायेगी और न वह यह समझ पायेगा कि उसको क्या कहा जा रहा है यह तो है बाह्य कोष के अध्ययन की बात। योगी भीतर की पढ़ाई पढ़ता है। उससे भीतरी विज्ञान का अध्ययन करके अपनी रूहानी शक्तियों को प्राप्त करना है और अपने आपको पूर्ण युक्त योगी का लक्षण श्रीमद्भगवदगीता में अखिल आत्मा भगवान श्री कृष्ण ने इस प्रकार कहा है –

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी सम लोष्ठाष्मकांचनः।।

युक्त योगी का लक्षण अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण बतलाते हैं कि जो योगी अपने संयम के आधार पर प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझ कर उन पर विजय प्राप्त कर लेते हैं

वे लोग ज्ञान तृप्तात्मा बन जाते हैं। ऐसे महायोगी पंच महाभूतों पर विजय प्राप्त करके भूतजयी होकर पंच महाभूतों पर पूर्ण अधिकार रखते हैं। उनके शरीर पर पृथ्वी–जल–अग्नि वायु और आकाश अपना किसी भी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं डालते। प्रत्युत योगी अपने मनोबल से भूतजयी होकर अपने शरीर में जैसे भी परिणाम पैदा करना चाहे कर लेता है। यह तो रही प्रकृति पर अधिकार की बात, इसके अतिरिक्त अपने विकास की ओर बढ़ता हुआ योगी शीघ्रातिशीघ्र आत्मबल से पूर्ण होकर प्रचण्ड भास्कर की तरह चमकने लगता है। अब उसका आत्म विज्ञान पर पूरा अधिकार है वह बिहार रहित स्थिति में पहुँच गया है। इन्द्रियाँ पूरी–पूरी नियन्त्रण में हैं। ऐसे योगी की दृष्टि में लोहा, सोना, पत्थर सब समान है वह किसी के किसी प्रकार के प्रलोभन में नहीं आता। क्योंकि वह आत्मिक कोष को पूर्णरूपेण प्राप्त कर चुका है। उसके लिए कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है।

वह सब प्रकार से परिपूर्ण युक्त योगी है। प्रकृति के जिस प्रकार के ऐश्वर्य को वह प्राप्त करना चाहे तो क्षणमात्र के चिन्तन से ही प्राप्त कर सकता है। योगदर्शन के विभूतिपाद में योगियों को प्राप्त कुछ विभूतियों का वर्णन किया गया है। संयम सिद्ध योगी अपने संयम के बल से संयम करके किन–किन सिद्धियों को प्राप्त कर लिया करता है। इसका थोड़ा सा उल्लेख इस लेख के उपसंहार में कर देना ही उचित समझता हूँ और भी इन विभूतियों को खोलकर बतलाया जाय जिससे पाठक गण अपने मनोबल को बढ़ाकर अपने आत्मधन से धनी बन जाय। भगवान पतंजलिदेव चित्त के तीन परिणामों में संयम करने का दिग्दर्शन कराते हैं –

परिणाम त्रय संयमाद् तीतानागतज्ञानम्

योगी जिस समय चित्त के धर्म लक्षण अवस्था आदि के स्थानों में संयम करता है तो उसको अतीत और अनागत ज्ञान प्राप्त हो जाता है। व्यास भाष्य की वातिक पढ़िये –

धर्मलक्षणावस्था परिणामेषु संयमाद् योगिनाम्
भवत्यतीतानागतज्ञानम् धारणा ध्यान समाधि त्रयमेकत्र
संयम उक्तः तेन परिणामत्रय साक्षाक्रियमाणम तीता।
नागतज्ञानं तेषु संपादयति।

अर्थात् धर्मी चित्त के अनेकों धर्म परिणाम होते रहे अब ये धर्मी चित्त इस समय एकाग्रता परिणाम वाला है क्योंकि इसकी प्रकृति शान्त दिखलाई देती है, यह चित्त का लक्षण परिणाम है। यह चित्त बहुत पुराने समय से एकाग्रता को प्राप्त हुआ है और इसकी

अवस्था उत्तरोत्तर ज्ञानमय है यह चित्त का अवस्था परिणाम कहा जाता है। जिस समय योगी चित्त के इन तीन परिणामों के अन्दर संयम करता है तो उसका भूत भविष्य का ज्ञान होते लगता है। चित्त की निर्मलता एवं अभ्यास के बल से चित्त के अवशेष धर्मों के लक्षणों को पहचान करके भली प्रकार से जान जाते हैं कि उसके मन में क्या छिपे हुए भाव हैं। जैसा कि नीतिशास्त्र में कहा जाता है –

आकारैरगतैर्गत्या चेष्टया भाषणे न च।
नेत्रवक्त्र विकारैश्च ज्ञायते अन्तर्गत मनः।।

अर्थात् – आकृति से इंगितो से चलने फिरने की गतो से हरकतों से अन्तर्गत मन का ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान तो साधारण व्यक्ति को भी हो ही जाया करता है। किन्तु चित्त शुद्धि से होने वाला ज्ञान परम शुद्ध भ्रान्ति रहित शुद्ध ज्ञान होता है। वही ज्ञान सिद्धियों का रूप धारण कर लेता है। इस छोटे से लेख में हमने संयम का प्रकार समझाकर योगी को होने वाले अतीत अनागत ज्ञान को समझाया। पढ़ने वाले साधक गण इस लेख को पढ़कर यदि अपने आत्मिक कोष को प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे तो बहुत ही भला होगा।

□□□

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।।

कालचक्र बड़े वेग से घूम रहा है। उसका नियन्त्रण ईश्वर के अतिरिक्त किसी के हाथ नहीं। प्रत्येक प्राणी के अन्दर बाहर रहते हुए परमशक्तिशाली प्रभु ही अपनी इच्छा से कालचक्र घुमा रहे हैं। कालरूपी घोड़ा इस विश्व रथ को चला रहा है। इस घोड़े की सात मुख्य किरणों के सहारे ही यह विश्व यज्ञ चल रहा है। क्रान्तिदर्शी कवि उसके संचालक बनकर सिद्धि प्राप्त करते हैं।

(चाणक्य नीति)

गुरु पूर्णिमा का अमृत पर्व

– योगाचार्य डॉ. दासलाल योगी

हमारे देश में गुरु पूर्णिमा व व्यास पूर्णिमा–व्यास पूजा का पावन पर्व अषाढ़ माह की पूर्णिमा को बड़े धूम धाम व उल्लास से मनाया जाता है। ईश्वर प्रदत्त अद्‌भुत ज्ञान राशि वितरण गुरु परम्परा से अनादि काल से चला आ रहा है।

परमात्म ज्ञान के उस अथाह भण्डार से गुरुदेव द्वारा ही वह दिव्य ज्ञान संचारित होकर मानव धरातल तक पहुँचता है। जिससे सामान्य व्यक्ति भी इस ज्ञान का ग्राहक बन जाता है, बशर्ते व्यक्ति इस विद्या का उचित अधिकारी हो। गुरु मुख से ही परमात्म ज्ञान का श्रवण करके साधक अपने परमार्थ पथ पर चला करता है। गुरु मुख से प्राप्त विद्या ही फलवती होती है। गोविन्द से भी गुरु की महिमा अधिक बताई गई है। कहा है कि–

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो लखाय।।

गुरु कृपा से ही ईश्वर के दर्शन संभव होते हैं। इसलिए प्रथम पूजा गुरुदेव की ही पूजा की जाती है। तत्पश्चात् गोविन्द की। सभी महान सन्तों ने गुरु की महिमा गाई है। गुरु शब्द शब्दे (क्रयादिगण) तथा गृ निरारणे इन दो धातुओं का व्युत्पन्न होता है। '**गृहाति उपदिशदि धर्मतिमति–गुरुः**' जो योगधर्म का उपदेश करे वही गुरु है। "**यदा गीर्यत स्तूयते देव–गन्धर्वा दिमिरिति गुरुः।**" अथवा देव गन्धर्वादि जिसकी स्तुति करते हैं वह गुरु हैं। जो गुरु वही पूर्ण है। गुरु वह है जो गरिमामय है। जिसमें गुरुत्वाकर्षण है जीवों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है सर्व समर्थ, व्यापक है, अनन्त है। पूर्णत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं। अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है। "**सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्व**– (गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है। इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहा जाता है। सर्वगत होने से ब्रह्म पूर्ण है। उपनिषद् में मंत्र आता है। "**पूर्णमिदंः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।**" अर्थात् वह ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत भी उससे व्याप्त होने के कारण पूर्ण कहा गया है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में '**रसो वै सः**' कहकर ब्रह्म को रसरूप में माना है। रसों का मूल स्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है। वह अमृत ही रसरूप ब्रह्म है। गुरु में भी अमृत्व है। शिष्य को अमृत अमर बना देने की सामर्थ्य गुरुदेव में ही होती है, अन्य किसी में नहीं। गुरु

पूर्ण समर्थ होता है चेतना का महास्रोत होता है। भगवान का अवतरण समय–समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब वे मानवाकृति में आते हैं, तब वे अपने सदुपदेश से, अपने दिव्य संस्पर्श से, लोकोत्तर चरित्र से जीव के कल्याण के लिए कृत संकल्प रहते हैं। इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव का आध्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरु शिष्य के रूप में ही होते हैं। उस क्षण जीव उस परम गुरु अर्थात् अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि वह जन्मने और मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरु अपने शिष्य के आत्मोत्थान के लिए मानव शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मन के शोधन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते हैं।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते हैं। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते हैं। जिससे जीव जीवत्व को त्याग कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव को भगवान जीव ब्रह्मैक्य का बोध करा देते हैं। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्देश्य है। भगवान के इसी गुरुत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगद्गुरु कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार परम गुरु से मिलन सहसा संयोगवश नहीं होता है। जन्म जन्मान्तर की उस आत्मदेव से मिलने की चाह तद्भावना भक्ति होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार सम्बन्ध के स्थापित होने पर यह बात संभव हो जाती है। अन्यथा परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मों की मलीनता से भगवान के निन्दक ही बनकर जीवन बिता देते हैं। हम में से बहुत से भाग्यवान पुरुषों ने उस परम देव का श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सद्गुरु रूप में दर्शन एवं पावन सानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरण तल में बैठने पर जीव की समस्त कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाती थीं। परम शांति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य समुदाय का जिनके गुरुदेव ही एक मात्र परायण एवं जीवन के सूत्रधार हैं यह देखकर ' **मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणित्रणा इवा** ' – यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

ऋषि कल्प गुरुदेव के देदीप्यमान मुखमण्डल को देखकर अध्यात्म की किरणें स्वतः शिष्यों के मानव तल को स्पर्श कर लिया करती थीं। गुकार अन्धकार का वाचक है और रुकार अन्धकार निवारक या प्रकाश देने वाला। जो अन्धकार अज्ञान को दूर कर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दे वही गुरु है – ऐसा गुरुगीता का वचन है। " **नास्ति त्वं गुरोः परम।** " गुरुदेव से आगे कोई तत्व नहीं यह भगवान सदाशिव का आदेश है। शिष्य का जीवन–मृत्यु समर्थ गुरुदेव के हाथ में होता है। आवश्यकता है शिष्य के गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की जो काफी दुःसाध्य है। योग से जीवन और ब्रह्म का एकत्व होता है। गुरु भक्ति से

गुरु शिष्य का एकत्व हो जाता है। जो शिष्य के जीवन का लक्ष्य रहा करता है। इसीलिए नित्य ही गुरु गीता के इस श्लोक का मनन करता हुआ कहता है –

नित्यं शुद्ध निराभासं निराकारंनिरंजनम्।
नित्यबोधंचिदानन्दं गुरु ब्रह्म नमाम्यहम्।।

अर्थात् जो नित्य है, शुद्ध है, आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्यबोध स्वरूप, चेतन और आनन्द रूप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार गुरु की सेवा से, चिन्तन से शिष्य गुरु की उपासना करता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसलिए गुरुदेव को भवभय विनाशक कहा गया है। गुरुदेव स्वयं मंत्र स्वरूप होकर शिष्य के आध्यात्मक शरीर में अनुप्रविष्ट तत्पश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराते हैं। शास्त्रों का लेख है–

"गुरु पूजा विहिनानाम् न सिद्धि : स्याद्कदाचन"। जो गुरुदेव की पूजा आराधना नहीं करते तथा गुरुदेव को संतुष्ट नहीं रखते उन्हें कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। जो गुरुदेव के दिये मंत्र का जाप करता रहता है तथा गुरुपदिष्ट मार्ग से ध्यान करता है वही गुरुदेव का प्रिय भक्त होता है और उसे ही अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है।

अतः शिष्य को गुरु निष्ठ रहना चाहिए। फिर उसके लिए भूतल में कुछ भी अप्राप्त नहीं रह जाता। इस बार गुरु–पूर्णिमा 9 जुलाई को सम्पन्न होना है। गुरु परम्परा को मानने वाले लोग इस अमृत पर्व को अत्यन्त धूमधाम से मनावें ताकि उन्हें भक्ति–भुक्ति अर्थात् इस लोक के सुख–ऐश्वर्य तथा मुक्ति दोनों की प्राप्त हों !

मृत्यु और अमरत्व

हर एक के पीछे मृत्यु का डर लगा हुआ है। परन्तु मृत्यु, दुःख, कष्ट आदि जो हैं, वे हमारे उत्तम शिक्षक हैं, इस दृष्टि से देखने से मृत्यु का महत्व ध्यान में आ सकता है। गलतियों और अशुद्धियों से बचाने की सूचना दुःखों और कष्टों से मिलती है। मृत्यु इस नश्वर जगत् की साक्षी दे रहा है और नश्वर जगत् में शाश्वत आत्मा है, यह ज्ञान मृत्यु को देखने से ही होता है। मृत्यु न होगी, तो जन्म भी नहीं होगा। पुत्र जन्म का उत्सव देखना है, तो पूर्वजों की मृत्यु अवश्य सहन करनी चाहिए। इस प्रकार मृत्यु हमारी उन्नति में विलक्षण सहायता करती है।

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

भगवान पातंजलि के योग दर्शन में समाधि प्राप्त करने के लिए क्रिया-योग का वर्णन है। **" तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः। "** अब तक के वर्णित श्रीमद्भागवत के स्कन्धों में हमने पढ़ा है कि तप के प्रभाव से ही ब्रह्माजी को अपना ज्ञान हुआ और तप के ही प्रभाव से वे मानसी सृष्टि करने में सक्षम हुये। ऋषि, देवर्षि, राजर्षि ही क्यों तप का सम्मान चाहे स्वार्थ हेतु ही असुरों ने भी किया है। स्वाध्याय–पहला सद्गुरु प्रदत्त मंत्र का जय–दूसरा अध्यात्मिक ग्रंथों का चिंतन–मनन्। यह साधक को साधना के मनोमय कोष तक सहज ही पहुँचा देता है। परन्तु विज्ञान एवं आत्मसाक्षात्कार हेतु अन्तिम तैयारी ईश्वर के प्रति साधक का अहंकार समर्पित करना ही है। यही क्रिया रूप में सतसंग, कीर्तन, स्तुतिगान, भजन आदि से परिष्कृत होकर अन्ततोगत्वा भक्तियोग का रूप ग्रहण करता है। जो परिपुष्ट होने पर परम प्रेम का आकार लेता है।

महाराज अम्बरीष और महा तपस्वी दुर्वासा की कथा का मूल मर्म भक्तियोग है। राजा अम्बरीष अपने हृदय में अनन्त प्रेम का दान करने वाले भगवान हरि का नित्य निरन्तर दर्शन करते रहते थे। सिद्धों को भी दुर्लभ इस प्रेमानन्द से राजा को भोग सामग्रियाँ भी आकर्षित नहीं कर पाती थीं।

समर्द्धयन्ति तान् कामा: स्वराज्यपरिभाविता:।
दूर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यत:।।24।। अ.4 स्क.9

ऐसे भक्तयोगी राज अम्बरीष प्रजापालनरूप स्वधर्म के द्वारा भगवान को प्रसन्न करने लगे जिससे शनैः-शनैः सर्वप्रकार की आसक्ति से वे मुक्त हो गये–

स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिव:।
स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् सङ्गान् सर्वञ्छनैर्जहौ।।26।। अ.4 स्क.9

अत: सुदर्शन चक्र की ज्वाला से व्यथित दुर्वासा जी भगवान के कथनानुसार अम्बरीस के पास आये और राजा के पैर पकड़ लिये। राजा यह देखकर लज्जित हुये तथा उनका हृदय दयावश पीड़ित हो उठा। वे भगवान के चक्र की बड़े विस्तार से तात्विक स्तुति गान किया। फल– स्वरूप चक्र शांत हो गया। दुर्वासा जी का चित्त जब स्वस्थ हो गया तब वे अम्बरीष को अनेका नेक आशीर्वाद देते हुए उनकी प्रसंशा करने लगे।

जब से दुर्वासा जी भागे थे, तब से लौटने तक अम्बरीष ने भोजन नहीं किया था। वे उनके लौटने की बाट देख रहे थे। अब राजा ने दुर्वासा जी के चरण पकड़ लिये और उन्हें विधिपूर्वक

भोजन कराया। उनके उच्छिष्ट प्रसाद को स्वयं ग्रहण किये।

दुर्वासा जी ने बहुत ही सन्तुष्ट होकर राजा अम्बरीष के गुणों की प्रशंसा की और आकाश मार्ग से उस ब्रह्मलोक की यात्रा की, जो केवल निष्काम कर्म से ही प्राप्त होता है–

एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः।
ययौ विहायसाऽऽमन्त्रय ब्रह्मलोकमहैतुकम्।। 22।। अ 5 स्क 9

अन्त में राजा अम्बरीष ने अपने पुत्रों पर राज्य भार सौंप कर स्वयं वन में चले गये। वहाँ बड़े धैर्य के साथ आत्मस्वरूप भगवान में अपना मन निरुद्ध कर गुणों के प्रवाहरूप संसार से मुक्त हो गये –

यथा म्बरीषस्तनयेषु राज्यं
समानशीलेषु विसृज्य धीरः।
वनं विवेशात्मनि वासुदेवे
मनो दधद् ध्वस्तगुण प्रवाहः।। 26।। अ 5 स्क 9

नवम स्कन्ध के छठे अध्याय में महाराज अम्बरीष के तीन पुत्रों में बड़े विरूप के वंश की कथा तथा संगदोष कैसे बड़े से बड़े ऋषि महर्षियों को भी एक क्षण में विचिलित कर देता है, यह सौभरि ऋषि की कथा से स्पष्ट होता है। विरूप के पौत्र रथीतर संतान हीन थे। अंगिरा ऋषि ने उनके पत्नी से ब्रह्मतेज सम्पन्न कई पुत्र उत्पन्न किये। अतः ये सभी आंगिरस कहलाये।

भगवान शुकदेव जी ने कहा– परीक्षित ! एक बार मनुजी के छींकने से उनकी नासिका से इक्ष्वाकु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में तीन सबसे बड़े विकुक्षि, निमि और दण्डक हुये हैं। विकुक्षि के पुत्र का नाम पुरञ्जय था। इनके पुरुषार्थ कर्मों के कारण 'इन्द्रवाह', ककुत्स्थ आदि भी नाम है।

सत्ययुग के अन्त में देवताओं दानवों का घोर युद्ध हुआ। देवता दैत्यों से हार गये। इन्द्र ने वीर पुरञ्जय को मित्र बनाया। राजा पुरंजय ने कहा – इन्द्र ! तुम यदि मेरे वाहन बनो तो हम युद्ध में दैत्यों को परास्त करेंगे। भगवान के कहने पर इन्द्र एक बड़ा भारी बैल बन गये। पुरन्जय बैल पर चढ़कर उसके ककुद (डील) के पास बैठकर भयानक युद्ध किये। दैत्यों का साहस जवाब दे गया। राजा पुरन्जय ने नगर, धन, ऐश्वर्य जीतकर इन्द्र को दे दिया।

पुरन्जय का पुत्र अनेना, उसका पुत्र पृथु, पृथु का पुत्र विश्वरन्धि, उसका पुत्र चन्द्र और चन्द्र का पुत्र युवनाख, इसका पुत्र शाकस्त उसका पुत्र कुवलयाश्व महाबली थे। इन्होंने उतङ्क ऋषि के प्रसन्नता हेतु धुन्धनामक दैत्य का वध किया। धुन्ध दैत्य की मुख ज्वाला से इनके इक्कीस हजार पुत्रों में से तीन को छोड़कर सभी जल गये। इस वंश परम्परा में युवनाश्व हुए हैं। वे निःसन्तान थे। ऋषियों ने बड़ी कृपा करके युवनाश्व से इन्द्रदेवता का यज्ञ कराया। एक दिन रात्रि में राजा युवनाश्व को बड़ी प्यास लगी। वह यज्ञशाला में अभिमंत्रित जल को पी लिया। ऋषियों ने अभिमंत्रित जल कलश में न पाकर पूछने लगे यह पुत्र उत्पन्न करने वाला जल

किसने पिया ? अन्त में जब उन्हें मालुम हुआ कि भगवान की प्रेरणा से राजा युवनाश्व ने ही उस जल को पिया है तो ऋषियों ने भगवान को नमस्कार करते हुए कहा– प्रभो आप धन्य हैं। आपका बल ही वास्तव में बल है –

राजा पीतं विदित्वाथ ईश्वरप्रतिहितेन ते।

ईश्वराय नमश्चक्ररहो देवबलं बलम्।।29।। अ.6 स्क 9

कालान्तर में युवनाश्व की दाहिनी कोख फाड़कर उसे एक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ। इन्द्र ने उसका पालन किया और त्रसदस्यु नाम रखा। त्रसदस्यु ही मान्धाता नामक चक्रवर्ती राजा हुये। वे बड़े आत्मज्ञानी थे। भगवान के अतिरिक्त और है ही क्या? ऐसी उनकी प्रत्यक्ष धारणा थी।

मान्धाता की पत्नी विन्दुमती थी। उसके गर्भ से तीन पुत्र हुये पुरुकुत्स, अम्बरीष (ये दूसरे अम्बरीष हैं) और योगी मुचुकुन्द। इनकी पचास बहनें सबकी सब सौभरि ऋषि का पतिरूप में वरण किया था।

पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम्।

तेषां स्वसार: पंचाशत् सौभरिं वव्रिरे पतिम्।।38।। अ.6 स्क 9

महात्मा सौभरि ऋषि की कथा योगियों की ऐश्वर्य की कथा के साथ–साथ भगवान का यह कथन "**मम्मायादुरत्यया**" को फलितार्थ करने वाली है।

महाराज इक्ष्वाकु मनु जी के छींकने से उत्पन्न हुये थे। इनकी वंश परम्परा में योगी मुचुकुन्द हुये हैं। स्वयं राजा इक्ष्वाकु ने योग के द्वारा शरीर का परित्याग करके परमपद प्राप्त किया था–

सतु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन्।

त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत् परम।।10।। अ.6 स्क 9

□□□

पावन अमृत पर्व गुरु पूर्णिमा

गुरु पुर्णिमा का पवित्र पर्व सदा की भाँति इस वर्ष भी 9 जुलाई 2017 को श्री सिद्धगुफा, संवाई धाम में बड़े ही धूम–धाम से मनाया जा रहा है। इसके एक दिन बाद ही 11 जुलाई से श्री रुद्रा–महायज्ञ का आयोजन रखा गया है जिसकी पूर्णाहुति 21 जुलाई को होगी। सभी गुरु भक्त भाई–बहिनों से निवेदन है कि उक्त कार्यक्रम में सम्मिलित होकर पुण्य के भागी बनें।

जय गुरुदेव !

व्यवस्थापक
आचार्य डॉ. दासलाल
श्री सिद्धगुफा, संवाई
धाम एत्मादपुर, आगरा

गुफा से बातें करता हूँ

– जगदीश राए बंसल 'अधम' मो. 9212434003

जब गुरु की याद सताती है तो, सिद्धगुफा पर जाता हूँ
पिछली बातें मन में लेकर, गुफा से बातें करता हूँ

जब देख न पाऊँ गुरु देव को, मन भर–भर कर आता है
पाँचों इन्द्री बदरिया बरसे, होश मुझे नहीं रहता है
चंचल मन मेरा शान्त रहे, गुफा से अर्ज लगाता हूँ
पिछली बातें......(1)

नैय्या भवर में डोल रही, मुझ को चलाना नहीं आता
कितने गुरु भाई बैठे, और बैठे हैं भाग्य विधाता
पतवार आन संभालो प्रभू जी, लहरों में खोए जाता हूँ
पिछली बातें......(2)

तेरी महिमा कैसे गाऊँ स्वामी, मेरी वाणी में दम नहीं
आनन्द के बादल बरसें, फिर मुझे कोई गम नहीं
सिद्धों की सिद्ध गुफा में जाकर, सिद्धों के दर्शन चाहता हूँ
पिछली बातें......(3)

जन्म जन्म के शुभ कर्मों से, योगेश्वर का प्यार मिले
योगी राज प्रभू राम लाल से, सिद्धों के सिद्ध गुरु मिले
अधम की उम्र कच्ची दाता, रुद्रा का पान न पाता हूँ
पिछली बातें......(4)

❑❑❑

योग परिचर्या

– कृष्ण कुमार पाण्डेय

आज वर्तमान परिवेश में मनुष्य भौतिकवाद की चकाचौंध से आवृत्त है। भौतिकवाद ने मनुष्य के सम्मुख विषम परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं। मानव कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य के बारे में विचार ही नहीं कर रहा है। जबकि हमारे पूर्वज कम साधनों में ही सन्तुष्ट थे। कुछ भौतिक वादियों की यह मान्यता हो सकती है कि वे अज्ञानता में पड़े थे। उन्हें कुछ ज्ञान नहीं था। यह बात कुछ काल खण्ड के लिए सही मान सकते हैं। जैसे मनुष्य जंगलों में निवास करता था। कच्ची वस्तुओं का ही भक्षण करता था। शरीर ढकने की चिन्ता ही नहीं थी। इस तरह विभिन्न प्रकार के विचार आज सबके मन में आ सकते हैं। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि कुछ नकारात्मक सोच वाले लोगों के मन में आ रहा होगा। वर्तमान परिवेश में क्या प्रत्येक व्यक्ति भौतिकतावाद की चकाचौंध से परेशान है ? ऐसी बात नहीं हैं। वैसे युगधर्म से कोई भी व्यक्ति परेशान हो सकता है। वह चाहे सात्विक वृत्ति वाला ही क्यों न हो ? इसका मूल कारण क्या है ? उत्तर – हम अपने स्वधर्म के प्रति सचेष्ट नहीं है, यह स्वधर्म क्या है ? इसका कारण गुणवृत्ति के आधार पर जो वर्ण व्यवस्था बनी हुई है, उसके अनुरूप कार्य किया जाए। धर्म का सामान्य अर्थ **" धारयते इतिधर्मः "** अर्थात् जिसे धारण किया जाए वह धर्म है। जैसे–विद्यार्थी का धर्म विद्या अर्जन करना है। अध्यापक का धर्म ज्ञान देना, व्यवसायिक का धर्म व्यवसाय द्वारा समाज की सेवा, किसान का कृषि कर्म करना। इसी प्रकार अन्य वर्ग के कार्य को समझना चाहिए। वैसे शान्ति सभी धर्म वालों को चाहिए। क्योंकि कलिधर्म से सब अशान्त है। यह शान्ति कहाँ से आयेगी ? क्या एक दिन योग की कक्षा में बैठने से आ जायेगी ? इसका उत्तर – नहीं होगा। क्यों ? क्योंकि योग, आध्यात्म, सूक्ष्म जगत या अन्तर्जगत की अनुभूत है।

योग का दो पक्ष प्रथम क्रिया पक्ष जिसमे यम, नियम, आसन प्रत्याहार है। द्वितीय पक्ष धारणा, ध्यान एवं समाधि है। यह भी मात्र एक–दो दिन की क्रिया नहीं है। अपितु पातञ्जलि दर्शन के सूत्र को देखें – **" स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्काराऽसेवितो दृढ़भूमिः "** अर्थात् साधक अपने अभ्यास को दृढ़ बनाने के लिए दीर्घ समय तक (या लक्ष्य प्राप्ति) आदरपूर्वक बिना किसी अवहेलना के प्रेम से साङ्गोपांग करता रहे। कुछ लोग क्रिया पक्ष को ही योग मानते है। कुछ आध्यात्म पक्ष को योग मानते हैं। लेकिन शरीर शोधन के लिए क्रिया पक्ष की अत्यन्त आवश्यकता हैं। क्योंकि हम लोगों का शरीर शुद्ध नहीं है। विभिन्न प्रकार के मलावरण से भरा हुआ है। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रिया दूषित हैं। आध्यात्म का मल (दोष) बड़ा सूक्ष्म होता है। इस बात को निरन्तर साधन करने वाला साधक अच्छी तरह से समझता है। हमारे मन में काम क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष भी मल है। यह अध्यात्म में बड़ा विक्षेप पैदा करता है। यह भी दूर

होना चाहिए। शरीर को शुद्ध करने के लिए योगियों ने विभिन्न प्रकार के आसन एवं हठयोग की क्रियाओं को विकसित किया है। वैसे आसनों के बारे में विदित है कि जितनी योनियाँ हैं उतने आसन हैं। लेकिन प्रमुख रूप से चौरासी आसन हमारे सिद्धों ने बताये हैं। इन सब में भी हमारे दादा गुरु योगेश्वर महा प्रभु श्री राम लाल जी महाराज ने जीवन तत्व के मात्र आठ आसन को बताया। जो शरीर को निरोग और स्वस्थ रखता है। इसके अतिरिक्त हठयोग की क्रियाएँ जिसमें नेति, धौति, वास्ति नौली, त्राटक एवं कपाल भाँति आदि हैं। इन क्रिया योग के द्वारा शरीर का पूर्ण शोधन करके आध्यात्म के सूक्ष्म खजाने को सिद्धगुरु के माध्यम से जान सकते हैं। बिना सिद्धगुरु के यह संभव नहीं होता है। क्योंकि साधन मार्ग में विभिन्न प्रकार के अन्तराय आते हैं। स्थानीय देवता भी अन्तराय पैदा करते हैं। सद्गुरु उन अन्तरायों के रहस्यों को भली भाँति जानते हैं। सद्गुरु उसका निराकरण कर देते हैं। पुनः साधक योग के उन रहस्यों को सद्गुरु कृपा से धीरे–धीरे देखता जाता है। नाथ परम्परा, सिद्ध परम्परा के ऐसे योगी हिमालय में विद्यमान होकर हिमालय में कदाचित भटके यात्री की आज भी मदद करते हैं। यह प्रमाणित है। सामान्य साधक उनको जान नही पाता है इस कलिकाल में जबकि सभी व्यक्ति कलिधर्म से ग्रसित हैं। साधन की क्षमता नही है। इसमें सामान्य साधक को भक्तियोग भी उपयुक्त साधन होगा। योगेश्वर भगवान कृष्ण क भक्तियोग उपदेश गीता के बारहवें अध्याय में वर्णित है। जिसमें भगवान ने कहा कि– हे अर्जुन अपने चित्त को मुझमें लगाओ, मेरे में ही अपनी बुद्धि को स्थिर करो। इसके लिए भी तुम्हें अभ्यास की आवश्यकता पड़ेगी। यदि अभ्यास नहीं कर सकते हो तो फिर मेरे लिए कर्म करो, यह भी नहीं कर सकते हो तो सम्पूर्ण कर्म के फल का त्याग करो। इसके अतिरिक्त शत्रु और मित्र, मान–अपमान, राग–द्वेष, हर्ष तथा अभर्ष में कभी घबराओ नहीं। अन्त में भगवान ने कहा– " अनिकेतः स्थिर मति भक्ति मान्मे प्रियो नरः अर्थात् जहाँ निवास करो वहाँ ममता, आसक्ति से रहित, स्थिर बुद्धि वाला भक्ति भाव से पूर्ण होकर अन्त में मुझ को ही प्राप्त होगे। ऐसा ही व्यक्ति मुझे प्रिय है।

उपर्युक्त रूप से भगवान के कहे गये वचन का पालन करना भी कठिन है। क्योंकि मनुष्य का मन द्विविधा (संशय) में रहता है। संशय रूपी सर्प व्यक्ति को सदैव घेरे रहता है। उसका मन किसी एक विषय में स्थिर नहीं रहता है। किन्तु क्रिया योग से मन शीघ्रता से एकाग्र होता है।

व्यक्ति के जीवन में सद्गुरु की बड़ी महत्ता है। संतों सिद्धों ने एक स्वर से गुरु की अपरिहार्यता स्वीकार की है। वैसे कलिकाल के गुरु के संबंध में कबीर ने कहा है कि कनफूका गुरु जगत का, राम मिलावन और। गुरु गीता का वाक्य है –

गुरवो बहवः सन्ति शिष्य वित्तापहारका।
तमेक दुर्लभ मन्ये शिष्य संतापहारका।।

फिर भी जीव को (साधक) निराश होने की आवश्यकता नहीं है। संसार में रहने के लिए विभिन्न प्रकार की नीतियाँ भी बनायी गई हैं। उसका भी अवलम्बन लेना चाहिए। महात्मा विदुर जी ने अपने नीति में बताया है कि –

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्।
धर्म जह्याज्जीवितस्यापि हेतो।।

अर्थात् मनुष्य जीवन को सुचारु रूप से जीने के लिए कामना से, भय से, लोभ से कभी भी अपने धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। पुनः कहा कि –

नित्योधर्म सुख दु :खे त्वनित्ये।
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्य :।।
त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये।
संतुष्य त्वं तोषपरो हि लाभ :।।

अर्थात् धर्म नित्य है लेकिन सुख दु:ख अनित्य, जीव भी नित्य किन्तु इसका कारण अविद्या अनित्य है। इसलिए अनित्य को छोड़कर निल्य में स्थिर होकर संतोष धारण करना चाहिए। यह सन्तोष मनुष्य का सबसे बड़ा धन है। भगवान पातंजलि ने योग सूत्र में बताते हुए कहा है कि–

" शौचं संतोष तप : स्वाध्याये ईश्वर प्रणिधानानि नियमा : "

अर्थात् पवित्रता (बाह्य एवं आन्तरिक) संतोष (किसी प्रकार से कामना या तृष्णा न करना) तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर शरणागत होकर रहना व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिए। जिस से योग के पथ पर आरुढ़ हो जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करें।

भर्तृहरि ने भी मनुष्य के कामना की स्थिति का वर्णन करते हुए वैराग्य शतक में बताया है कि –

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता।
स्तपोन तप्तं वयमेव तप्ता :।।
कालो न यातो वयमेव याता।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा :।।

अर्थात् व्यक्ति यह सोचता है कि हम विषयों को न भोग सके, किन्तु विषयों ने हमें भोगा व्यक्ति तप नहीं कर सका पर तप ने उसे तपा दिया, काल समाप्त नही हुआ किन्तु हम समाप्त हो गये। अर्थात् मृत्यु को प्राप्त कर गये तृष्णा भी हमारी समाप्त नहीं हुई किन्तु समाप्त हो गये।

इस तरह व्यक्ति का जीवन उथल–पुथल से भरा हुआ है। किन्तु व्यक्ति को संयम एवं धैर्य से कार्य करना चाहिए। व्यक्ति को संसार में जीने के लिए अपना यह लक्ष्य रखना चाहिए कि इस संसार में मेरा कुछ भी कर्म नहीं है। सभी कर्म ईश्वर का है। हम यन्त्रवत कार्य करते जा रहे हैं। जैसे बिजली के आ जाने से पंखा अनवरत चलता रहता है। ज्योंही बिजली गयी पंखा बंद उसी प्रकार हमारा जीवन है। योग एक ऐसी विद्या मात्र मनुष्य के लिए है जिससे वह सद्गति प्राप्त कर सकता है। हमारे बीच में ऐसे साधक हैं जो योग पथ में आरूढ़ होकर गुरु कृपा से अपने जीवन को धन्य बना रहे हैं। ऐसे साधकों को खोजने की आवश्यकता है। ऐसे

साधक गुप्त रूप से जीवन यापन कर रहे हैं। वास्तव में योग अमूल्य निधि है। साधक जब अन्तर्मुखी होता है तब वह बोलता नहीं है। उसकी स्थिति समुद्र पीकर भी होठ सूखने जैसी होती है। इसलिए साधक को सिद्ध पीठों में भी जाना चाहिए। किन्तु कामना रहित, किसी भी प्रकार की कामना न करे। क्योंकि परम कृपालु परमात्मा हमारी हर आवश्यकताओं को पूर्ण करता रहता है।

हम अधीर होकर दिगभ्रमित होते रहते हैं। इसलिए हमारे जीवन में विभिन्न प्रकार की विसंगतियाँ आती रहती हैं। उससे निजात पाने के लिए जीवन में योग आवश्यक है।

❑❑❑

शोक–संवेदना

बड़े दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि दिल्ली पीतमपुरा निवासी हीरालाल शर्मा जी की धर्मपत्नी श्रीमती सन्तोष शर्मा का 12 मई 2017 को देहावसान हो गया है। श्री प्रभुजी उन्हें अपने चरणों में स्थान दें व परिवारीजनों को दुःख सहने की ताकत दें।

• • •

उमाशंकर गुप्ता बी.एच.ई.एल. झाँसी की धर्मपत्नी श्रीमती ऊषा गुप्ता का दिनांक 29.05.2017 को स्वर्गवास हो गया है। हम हार्दिक संवेदना प्रकट करते हैं। प्रभुजी अपने चरणों में स्थान दें।

सम्पादक –
सिद्धयोग मासिक

योगक्षेमं वहाम्यहम्

– श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा

श्रीमद्‌भागवत् गीता के नवें अध्याय का 22 वाँ श्लोक इस प्रकार है–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां
योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

इसका अर्थ यह है कि जो व्यक्ति अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना में रत रहते हैं, ऐसे निरन्तर अपने से जुड़े हुए व्यक्तियों के योग तथा क्षेम दोनों का निर्वहन मैं स्वयं करता हूँ।

कितना उदार व उन्सुन्म आमन्त्रण है प्रभु की ओर से जीवमात्र को। प्रभु उद्घोष कर रहे हैं कि समस्त समर्पण भाव से मेरी ओर आने का मन तो बनाओ। जब तक हमारा मन ही स्थिर नहीं है, वह भ्रमित व चलायमान है, तब तक हमारा संशयालु मन शंकाओं से ग्रस्त होकर भयाक्रान्त ही रहेगा। योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में एक स्थान पर कहा भी है कि **'संशयात्मा विनश्यति'**। संशय में पड़े रहने वाले व्यक्ति का विनाश ही हुआ करता है।

इसका प्रथम सोपान है श्रद्धा। श्रद्धावान ही ज्ञान लाभ किया करते हैं। गीता में अन्यत्र स्थलों पर निम्न सुन्दर उक्तियाँ इस बात की पुष्टि में सहायक हैं। एक जगह तो यह कहा है कि " **श्रद्धामयोऽयं पुरुषः** " तथा दूसरे स्थल पर " **श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्** "। इन उक्तियों का यदि हम थोड़ा सा भी विश्लेषण करने का प्रयास करें तो हमारा संशय दूर हो जायेगा। 'श्रद्धामयोऽयं पुरुषः' का भाव यह है कि ईश्वर की अंशभूत आत्मा, जो हम सबके अंदर विराजमान है वह श्रद्धा से पूर्ण है। बस हमें मात्र करना यह है कि उस श्रद्धा को जाग्रत कर उसे एक सुन्दर दिशा की ओर उन्मुक्त कर देना है। जहाँ श्रद्धा को अनुकूल वातावरण मिला, वहीं दिव्य भाव का संचार हो जाया करता है। इसके पश्चात् भगवद् वचन है कि **'श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्'** इसका आशय यह है कि श्रद्धा से युक्त व्यक्ति ही ज्ञान का लाभ किया करता है।

ज्ञानवान व्यक्ति के लिए तो भगवान श्रीकृष्ण ने कितनी उदार वाणी में इन शब्दों का उच्चारण किया है कि 'ज्ञानवान मां प्रपद्यते' ज्ञानवान व्यक्ति मुझे ही प्राप्त हुआ करता है। एक अन्य स्थल पर भगवान वासुदेव अपने मुखारविन्द से यह कहते हैं कि मुझे चार प्रकार के व्यक्ति भजते हैं। वे चारों प्रकार के व्यक्ति सुकृति अर्थात् पुण्य कार्यों को ही करने वाले होते हैं। प्रथम प्रकार के व्यक्ति वे होते हैं, जो किसी अकस्मात विपत्ति के आने पर दुखी होकर अनन्य भाव से मेरे शरणागत हो जाया करते हैं। दूसरे प्रकार के व्यक्ति वे हैं जो 'जिज्ञासु' की कोटि में रखे जा

सकते हैं। किन्हीं पूर्व जन्मों के संस्कारवश उनके पुण्योदय होते हैं तब वे मेरी ओर उन्मुख होते हैं और तभी वे 'अथा तो ब्रह्म जिज्ञासा' के प्रथम ब्रह्मसूत्र के अध्येता बन प्रभुकृपान्वेषी होकर मात्र जिज्ञासु भाव से इस प्रशस्त अर्थ की ओर अग्रसर होते हैं।

तीसरे प्रकार के लोग 'अर्थार्थी' की कोटि में रखे गये हैं। ये वे बुद्धात्मा हैं जो प्रभु शरणापन्न हुआ करते हैं परन्तु उसमें उनका कुछ न कुछ प्रयोजन निहित हुआ करता है। चौथे प्रकार के सर्वोपरि बुद्धात्मा वे व्यक्ति हैं जो ज्ञानवान हैं तथा तात्विक रूप से जिन्हें आत्मबोध हो गया है। इसलिये भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से निम्न श्लोक के साथ-साथ अन्य श्लोकों को भी हमारे कल्याण के लिए गीता में सन्निहित कर दिया है।

चतुर्विधा भन्ज मां
जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुर्थार्थी
ज्ञानी च भरतर्षभ।।
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त
एक भक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थ
महं स च मम प्रिय।।
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी
त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः सहि युक्तात्मा
मामेवानुत्तमां गतिम्।।
बहूनां जन्मनामन्ते
ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स
महात्मा सुदुर्लभः।।

तो इस प्रकार से हम देखते हैं कि ज्ञानी पुरुष के लिए भगवान ने स्वयं कहा है कि वह एकमति अर्थात् एकनिष्ठ होकर रहते हैं तथा उनका तात्विक विवेचन उन्हें सदैव एकरूपता की स्थिति में बनाये रखता है। जो ज्ञानवान होगा, वह भक्तिवान अवश्य ही होगा, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। इसलिए ज्ञानवान की कोटि सर्वोपरि भगवान द्वारा रखी गयी है।

उपरिलिखित से यह निष्कर्षतः सिद्ध हो जाता है कि ज्ञानी व्यक्ति में भक्ति की अतिशयता स्वयं सिद्ध है। ऐसे ही पुण्यवान व्यक्ति ज्ञान व भक्ति दोनों के तारतम्य से यदि भगवत् चिन्तन के प्रति अनन्य भाव से सन्नद्ध रहते हैं तब तो यह सोने में सुहागे की उक्ति को चरितार्थ करने वाली बात हो जाती है। पहले तो अनन्य भाव हो उस पर तत्वतः ज्ञानवत्ता की स्थिति तथा उस पर भी

योगमुक्त होकर भगवत् चिन्तन में ही निरत रहने वाले व्यक्ति की योगक्षेम और कौन वहन करेगा ? वही ततो वहन करेंगे जिनका निशदिन ऐसे व्यक्ति श्रनन, श्रवण एवं निदिध्यासन करते रहते हैं।

एक बात यहाँ उल्लेख कर देने योग्य यह है कि ऐसे सद्गुणी व्यक्ति में भी वहाँ अहंकार का भाव उदय हो जाता हैं तो उनके उल्लिखित गुण गौण रूप में विद्यमान रहते हैं तब अनन्यभाव न रहकर वह अन्य भाव हो जाया करता है जिससे उससे प्राप्त होने वाले योगक्षेम की स्थिति फिर संशयास्पद हो जायेगी। तो अहंकार की स्थिति से ज्ञानी व्यक्ति को सदैव बचना चाहिए। तथापि वे सर्वज्ञता की स्थिति को भी प्राप्त कर चुके हों उन्हें यही विचार करना चाहिए कि वे तो निमित्तमात्र हैं। कर्त्ता, धर्त्ता तथा हर्त्ता तो उसके अतिरिक्त अन्य ही हैं जिसके उपर वे सदैव अनन्य भाव से आश्रित हैं।

व्यवहार जगत में भी हम प्रायः यह देखते रहते हैं कि जब एक शिशु जो पूर्ण रूपेण अपनी जननी पर ही प्रत्येक कार्य के लिए आश्रित एवं अवलम्बित है, उसके हर कार्य, खान–पान, पहनना, ओढ़ना आदि की जिम्मेदारी उसकी माता की ही हो जाया करती है और दूसरे अर्थों में वह ही उसके योगक्षेम की संपूर्ण भाव से देखरेख किया करती है। जहाँ उस शिशु की शिशुता समाप्त हुई और बच्चे में यह भाव आया कि नहीं अब तो मैं दूसरे – दूसरों का सहारा लेकर या अपने से ही सब काम कर सकता हूँ– तब क्या माता उसकी जिम्मेदारी को ओढ़ती है। कदापि नहीं। इसी प्रकार भगवदीय पक्ष में भी इस सिद्धान्त की प्रतिक्रिया अवश्यम्भावी है।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि योग तथा क्षेम दोनों भिन्न–भिन्न अर्थ को धारण करते हैं। जो हमें प्राप्त है उसका परिरक्षण भगवान स्वयं करते हैं तथा जो प्राप्तव्य है अथवा जो भावी जीवन के लिये कल्याणमय है, उसका दायित्व भी भगवान् स्वयं वहन करते हैं। कितना बड़ा उपकार परम कृपालु प्रभु करने को तत्पर हैं परन्तु एक हम हैं जो सांसारिक अवलम्बों को ही सर्वस्व माने बैठे हैं और सदैव चिन्तातुर एवं भयातुर रहते हैं।

हम दूर क्यों जाँय ? हमारे आराध्य गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज स्वयं इसके अनुपम उदाहरण हैं। यद्यपि वे इतने अधिक सामर्थ्यवान तथा सिद्ध थे कि स्वयं ही सब कार्यों का निस्तारण सहज रूप में कर दिया करते थे परन्तु कभी भी अपने ऊपर इसका श्रेय नहीं लिया। वे निरहंकार एवं निर्लिप्त भाव से अपने इष्ट एवं प्रातः स्मरणीय प्रभु श्री रामलाल जी का सदा सर्वदा चिन्तन किया करते थे और यही कहा करते थे कि करण कारणहार तो प्रभुजी ही हैं, मैं तो कुछ भी नहीं। वे विनोद में प्रायः कहा करते थे कि जैसे हलवे में चम्मच हुआ करता है वही मेरी स्थिति है। हलवा तो प्रभु जी स्वयं हैं। ये थी उनके अनन्य भाव की पराकाष्ठा।

मेरे विचार में यदि हम भी सर्वतोभावेन अपने ही इष्ट एवं आराध्य गुरुदेव के प्रति समर्पित भाव से अनन्य भक्ति युक्त रहकर उनका चिन्तन करते हैं तो क्या वे हमारी योग और क्षेम का वहन नहीं करेंगे, अवश्यमेव करेंगे, यही हमारी अटूट श्रद्धा एवं आस्था है। इसे ही सदैव श्री गुरुदेव बनाये रखें, यही हमारी हार्दिक कामना है।

❑❑❑

ईश्वर प्रणिधान अथवा भक्तियोग

— श्री पूर्णचन्द शास्त्री

ईश्वर प्रणिधान योग प्राप्ति का एक उत्कृष्ट तथा सुगम मार्ग है। यह वह साधन जो कि सब साधनों से सरलतम तथा सभी प्रकार के साधकों के लिए कल्याणकारी है। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है – अनन्य शरणगति, शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण, अन्तःकरण आदि सब बाह्य तथा आभ्यन्तर करणों, उनसे होने वाले सभी कर्मों और उनके फलों को अर्थात् अपने सारे जीवन को ईश्वर के समर्पण कर देना, ईश्वर ही मेरे सर्वस्व है, वे ही मेरे प्राणाधार, माता–पिता, बंधु तथा सखा हैं, वे मेरे हैं और मैं उनका हूँ– इस प्रकार का दृढ़ निश्चय रखते हुए हर स्थिति में प्रसन्नचित्त एवं सन्तुष्ट रहना तथा अपने इष्टदेव का हर क्षण चिन्तन करते रहना और अपने गुरु–मंत्र का अधिकाधिक जाप करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

ईश्वर सब जीवों के परम आश्रय, परम सखा एवं आहैतुक कृपालु हैं। जो व्यक्ति सच्चे हृदय से उनकी शरण ले लेता है उसका पूरा भार वे दयासागर स्वयं उठा लेते हैं। भगवान ने स्वयं अपने मुखारबिन्द से इस बात को स्वीकार किया है –

सकृदेव प्रपन्नाय
तवास्मीति याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यः
ददाम्येतद् व्रतंमम्। (वाल्मीकि रामायण)

जो मनुष्य " हे प्रभो ! मैं आपका हूँ " इस भाव से केवल एक बार भी अपने को सब ओर से मेरे अर्पण कर देता है, उस सच्चे हृदय से प्रार्थना करने वाले भक्त को अपनाकर मैं उसे सम्पूर्ण प्राणियों से सर्वथा भयमुक्त कर देता हूँ, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

अर्जुन को भक्तियोग का उपदेश करते हुए अखिल लोकनायक श्रीकृष्ण ने भी इस बात की घोषणा की है कि जो साधक मेरी अनन्य शरण ले लेते हैं उनका योग और क्षेम मैं वहन करता हूँ।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां
योग क्षेमं वहाम्यहम्।।

जो अनन्य भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते है उन नित्यनिन्तर मेरा चिन्तन करने वाले पुरुषों का योग क्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ। अर्थात् उनसे मैं भगवत्स्वरूप की प्राप्ति करा देता हूँ और भगवत्प्राप्ति के निमित्त किये गये उनके साधन की रक्षा भी मैं स्वयं करता हूँ।

"ईश्वर प्रणिधान" अष्टाङ्गयोग का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके बिना योगमार्ग में विशेष प्रगति नहीं हो सकती। क्योंकि योगमार्ग में आने वाले विघ्नों की निवृत्ति ईश्वर-प्रणिधान से ही होती है। योग-दर्शन के साधनपाद में नियमों के अन्तर्गत ईश्वर प्रणिधान का वर्णन किया गया है तथा उसका फल बताया गया है- समाधि लाभ। जैसे-

समाधिसिद्धिरिश्वर प्रणिधानात्।

अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्ध होती है।

समाधिपाद में समाधि-प्राप्ति के विविध उपायों का वर्णन करते हुए महर्षि पतञ्जलि देव जी महाराज ने सूत्र संख्या 23 से 26 तक ईश्वर का लक्षण तथा ईश्वर प्रणिधान का स्वरूप एवं उनका फल बताया है। जैसे –

ईश्वर प्रणिधानाद्वा। (योग सूत्र 1/23)

ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर की अनन्य शरणागति से भी निर्वीज समाधि सिद्ध हो जाती है।

तस्य वाचक प्रणवः। (योग सूत्र 1/27)

उस ईश्वर का नाम 'ओम' है।

तज्जपस्तदर्थ भावनम्। (योग सूत्र 1/28)

साधक को ईश्वर के नाम का जप करना चाहिये और उसके स्वरूप का चिन्तन करना चाहिये। जप के साथ अपने इष्ट का स्मरण करते रहना चाहिये। अथवा –

जप श्रान्तः शिवंध्यायेत्
ध्यान श्रान्तः शिवं जपेत्।

जप के बाद ध्यान करे और ध्यान के बाद जप करे। इससे सभी अन्तरायों की निवृत्ति हो जाती है और साधक का मार्ग प्रशस्त होता चला जाता है। जैसे –

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तदः यमावश्च। (योग सूत्र 1/29)

ईश्वर के नाम का जप और उसका ध्यान करने से योगमार्ग के सभी अन्तराय दूर हो जाते हैं और परमेश्वर के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

योग का मुख्य उपाय अभ्यास और वैराग्य साधन तो समाहित चित्त वाले आम अधिकारी ही कर सकते हैं किन्तु विक्षिप्त चित्त वाले मध्यमाधिकारी, जिनका चित्त साँसारिक विषय वासनाओं तथा राग-द्वेष से मलिन है उनके लिए ईश्वर-प्रणिधान ही योग प्राप्ति का एकमात्र साधन है। प्रणिधान अर्थात् अनन्य चिन्तन के प्रभाव से साधक के राग-द्वेष आदि मल दूर हो जाते हैं तथा उसे भोगों से वितृष्णा एवं कर्म-फल में अनासक्ति हो जाती है, जिससे उसका अभ्यास और वैराग्य स्वतः ही सिद्ध हो जाता है।

श्रीमद्भागवदगीता में ईश्वर प्रणिधान का स्वरूप एवं उसका फल इस प्रकार बतलाया गया है-

मच्चित्ता मत्द्गप्राणा,
बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं,
तुष्यन्ति च रमन्ति च।।
तेषां सतत युक्तानां,

भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं,

येन मामुपयान्ति ते।।

अनन्य चिन्तन में अद्भुत शक्ति है, जो व्यक्ति सर्वतोभावेन प्रभु का भजन करता है वह प्रभु में ही मिल जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, श्रीमद्भागवतपुराण का वचन है–

विषयान्ध्यायतो चिन्त

विषयेषु विसज्जति।

मामनुस्मरतो नित्यं

मय्येव प्रविलीयते।।

विषयों का चिन्तन करने से मन विषयों में ही रचा–पचा रहता है और मुझ परमेश्वर का चिन्तन करते रहने से यह मुझ में ही लीन हो जाता है।

प्रभु चरणों का अनन्य चिन्तन करने वाले ध्यानाभ्यासी तथा गुरु–मंत्र का अधिकाधिक जाप करने वाले श्रद्धालु साधक उक्त सिद्धान्त की सत्यता को अवश्य स्वीकार करेंगे।

सामान्य जनों को भी अखिलात्मा श्रीकृष्ण के इस वचनामृत पर विश्वास करके साधनापरायण बन जाना चाहिये:–

अपि चेत्सुदुराचारो

भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यय:

सम्यग्व्यवसितो हि स:।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा

शश्वच्छान्ति निगच्छति।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न

मे भक्त: प्रणश्यति।।

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी मेरा भक्त होकर अनन्य भाव से मेरा भजन करता है तो वह साधु ही मानने योग्य है। क्योंकि उसने भली–भाँति निश्चय कर लिया है कि ईश्वर भजन के समान श्रेष्ठ कार्य अन्य कुछ नहीं है।

भजन के प्रभाव से वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

ईश्वर की शरणागति को ही भक्ति–योग कहा जाता है। भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति भज्धातु से हुई है, जिसका अर्थ है– सेवा ! शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति की परिभाषा इस प्रकार की गई है – "सा परानुरक्तिरीश्वरे", अर्थात् अपने इष्ट में परम अनुराग होना ही भक्ति है।

भक्ति नौ प्रकार की बताई गई है। जैसे :–

श्रवणं कीर्तनं विष्णो:

स्मरणम् पाद सेवनम्।।

अर्चनं वन्दन दास्यं

सख्यामात्मं निवेदनम्।।

महापुरुषों से ईश्वर की लीलाओं को सुनना तथा शास्त्रों को पढ़ना, श्रद्धालुजनों के साथ प्रभु का गुणगान करना, ईश्वर का हर समय स्मरण करते रहना, गुरु–चरणों की सेवा करना, प्रभु का मानसिक पूजन, वन्दन, हास्यभाव से उनकी सेवा करना, सख्यभाव से आत्मीयता रखना और समर्पणभाव अर्थात् प्रणिधान यह नौ प्रकार की भक्ति हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम ने शबरी को इस नवधा भक्ति का उपदेश दिया था।

यथा:–

नवधा भक्ति कहों तोहि पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं।।
प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान।
चौथी भक्ति मम गुनगन करइ कपटतजि गान।।
मन्त्रजाप मम दृढ़ विश्वासा।
पंचम भजन सो वेद प्रकाशा।।
छठ दम शील बिरति बहु करमा।
निरत निरन्तर सज्जन धर्मा।।
सप्तम सब मोहिमय जग देखै।
मोतें सन्त अधिक कर लेखैं।।
अष्टम यथा लाभ सन्तोषा।
सपनेहुँ नहि देखै परदोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना।।

(1) सन्तों का सत्संग करना तथा श्रद्धा पूर्वक उनका उपदेश सुनना प्रथम प्रकार की भक्ति है। इसे श्रवण भक्ति कहा जाता है।

(2) ईश्वर की लीला कथाओं में प्रेम रखना तथा उनका गुणगान करना यह दूसरे प्रकार की भक्ति है।

(3) अभिमान को त्यागकर गुरुदेव के चरण कमलों की श्रद्धापूर्वक सेवा करना तीसरे प्रकार की भक्ति है।

(4) निष्कपट–भाव से ईश्वर का गुणगान करना चौथी प्रकार की भक्ति है।

(5) मंत्र का जप करना तथा अपने इष्ट में दृढ़ विश्वास रखते हुए निरन्तर अनन्य भाव से प्रभु का चिन्तन करना पाँचवीं प्रकार की भक्ति है।

(6) इन्द्रिय दमन, आदर्श व्यवहार, कर्मो में अनासक्ति तथा सज्जनों के धर्म में निरन्तर उत्साह पूर्वक लगे रहना छठी भक्ति है।

(7) सारे संसार को प्रभुमय देखना तथा सन्तों को ईश्वर से भी श्रेष्ठ समझकर उनकी अधिक से अधिक सेवा करना सातवीं भक्ति है। क्योंकि सन्तों का स्थान ईश्वर से भी ऊँचा है। भक्त कबीर का यह

कथन ध्यान देने योग्य है।

हरि सों तू जनि हेत कर,
कर हरिजन सों हेत।
माल मुलुक हरि देत है,
हरिजन हरि ही देत।।

(8) अपने पास जो कुछ है उसी में सन्तोष कर लेना तथा स्वप्न में भी दूसरों का दोष न देखना यह आठवीं प्रकार की भक्ति है।

(9) सबके साथ सरल तथा छल रहित व्यवहार करना तथा ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखते हुए किसी भी स्थिति में हर्ष या शोक न करना यह नौवीं भक्ति है।

भक्ति–योग भवसागर को पार करने के लिए एक सुदृढ़ नौका है। प्राणायामादि हठयोग की कष्ट साध्य क्रियायें हर व्यक्ति नहीं कर सकता और न अभ्यास वैराग्य रूप योगसाधन सबके लिए सम्भव है। उपरोक्त साधना में साधक को अपने साधन की चिन्ता रहती है और साधना में प्रगति न होने पर दुःख होता है किन्तु भक्ति–योग में सच्चे हृदय से ईश्वर की शरण ले लेने के पश्चात् उसे कुछ भी करना शेष नहीं रहता। उसका सारा भार वे दयामय प्रभु स्वयं उठा लेते हैं। भक्त योगी चिन्ता का भार अपने प्राणाधार इष्टदेव पर छोड़कर स्वयं प्रभु चिन्तन में मग्न रहता है। उसके सभी कार्य ईश्वर की प्रसन्नता के लिए ही होते हैं। अतः उसे कर्मफल की इच्छा नहीं रहती। भक्तियोगी अपनी अनन्य भक्ति के प्रभाव से विपत्ति के पहाड़ को हँसते–हँसते पार कर जाता है। कोई भी भौतिक शक्ति उसका सामना नहीं कर सकती। मीरा तथा प्रहलाद के पावन जीवन चरित्र इस बात के मूर्तिमान उदाहरण हैं। भगवत् शरणागत भक्त योग की सभी सिद्धियों का स्वामी होता है। राम भक्त हनुमान की योग लीलायें इस बात को सिद्ध करती हैं।

महापुरुषों ने भक्ति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। मुनिजन भक्ति का ही वरण करते आये हैं। यहाँ तक योगेश्वर भगवान श्री शंकर भी अपने इष्ट उस परम प्रभु से भक्ति का ही वर माँगते हैं। जैसे :–

बार बार वर माँगहु हरषि देहु श्रीरंग।
पदसरोज अनपायन भक्ति सदा सत्संग।। (रा.च.मानस–उ.का.)

बिना भक्ति के राजयोग सिद्ध नहीं हो सकता। अतः योगाभ्यासी साधकों को चाहिए कि वे अपनी साधना में ईश्वर प्रणिधान को अवश्य स्थान दें।

प्रभु कृपा से जिन सौभाग्यशाली साधकों को गुरुदेव की प्राप्ति हो चुकी है उन्हें अनन्यभाव से गुरुदेव के चरण–कमलों का चिन्तन करते रहना चाहिए तथा गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते हुए गुरुमंत्र का अधिक से अधिक जप करना चाहिये। यदि इतनी साधना हमसे हो जाए तो शेष कार्य वे सर्वशक्तिमान स्वयं पूरा करा देंगे।

जिन्हें अभी गुरुदेव की शरण न मिली हो उन्हें निष्कामभाव से श्रद्धा भक्ति पूर्वक परमेश्वर को अथवा अपने इष्टदेव को ही गुरु मानकर उनके शरणागत हो जाना चाहिये। वे गुरुओं के गुरु दीन–बन्धु परमात्मा स्वयं ही उनका मार्ग–दर्शन करते रहेंगे।

❑❑❑

सौंफ और हल्दी

–डॉ. गणेश नारायण चौहान

इसका लेटिन नाम– फोनिक्युलम वलगेरे है।

आँव– सौंफ का तेल 5 बूंद आधा चम्मच चीनी डालकर नित्य चार बार लेने से आँव आना बन्द हो जाती है।

दस्त– यदि मरोड़ देकर तथा थोड़ा–थोड़ा मल आता हो तो 3 ग्राम कच्ची और 3 ग्राम भुनी सौंफ मिश्री के साथ मिलाकर दें।

छोटे बच्चों के पतले दस्त, पेचिश में 6 ग्राम सौंफ, 82 ग्राम पानी में उबालें। जब पानी आधा रह जाए तब उसमें एक ग्राम काला नमक डाल दें। बच्चों को 12 ग्राम पानी दिन में तीन बार देने से बहुत लाभ होता है।

सरलता से दाँत निकलना– बच्चे के दाँत निकलते समय यदि वह रोता हो तो गाय के दूध में मोटी सौंफ उबालकर, छानकर बोतल में भर लें तथा एक–एक चम्मच चार बार पिलायें, इससे दाँत सरलता से निकल आयेंगे।

बच्चों का पेट फूलना – रात को एक चम्मच सौंफ आधा कप पानी में भिगो दें। प्रातः सौंफ को मसल कर छान लें। इस पानी को दूध में मिलाकर पिलाने से बच्चों का पेट फूलना, गैस भरना, पेट दर्द ठीक हो जाता है।

खुजली – सौंफ और धनियाँ समान मात्रा में पीस लें। इसमें डेढ़ गुना घी और दुगनी चीनी मिलाकर रखें। सुबह–शाम 30–30 ग्राम खायें। हर प्रकार की खुजली में लाभ होता है।

पेट का भारीपन– नीबू के रस में भीगी हुई सौंफ को भोजन के बाद खाने से पेट का भारीपन दूर होता है भूख खूब लगती है तथा मल भी साफ होगा।

नेत्र–ज्योति– भोजन के बाद सौंफ खाने से पाचन और नेत्र–ज्योति बढ़ती है तथा पेशाब खुलकर आता है। सौंफ पीस लें। रात को सोते समय आधा चम्मच शक्कर मिलाकर दूध से फँकी लें। नेत्र–ज्योति बढ़ेगी।

जुकाम– 15 ग्राम सौंफ, 3 लौंग आधा किलो पानी में उबालें, चौथाई पानी रहने पर देशी बूरा या चीनी मिलाकर घूँट–घूँट पीयें।

बन्ध्यात्व– बन्ध्या स्त्री यदि 6 ग्राम सौंफ का चूर्ण घी के साथ तीन मास तक सेवन करें तो निश्चित गर्भ धारणा करने योग्य हो जाती है। यह कल्प मोटी स्त्रियों के लिए विशेष लाभप्रद है। यदि स्त्री दुबली–पतली हो तो उसमें शतावरी चूर्ण मिलाकर देना चाहिए। 6 ग्राम शतावरी

मूल का चूर्ण 12 ग्राम घी और दूध के साथ खाने से गर्भाशय की सब विकृतियाँ दूर होती हैं। और गर्भ स्थापन होता है। यह योग वैद्य रामनाथ द्वारा लिखित पुस्तक बनौषधि शतक में से लिया गया है।

गर्भपात– (1). गर्भ धारण करने के बाद 62 ग्राम सौंफ, 31 ग्राम गुलाब का गुलकन्द पीसकर पानी मिलकर एक बार नित्य पिलाने से गर्भपात रुकता है।

(2). पूरे गर्भ काल में सौंफ का अर्क पीते रहने से गर्भ स्थिर रहता है।

अतिनिद्रा– जिसे अधिक निन्द्रा आवे, हर समय नींद, सुस्ती रहे उसे 10 ग्राम सौंफ को आधा किलो पानी में उबालकर चौथाई रह जाने पर थोड़ा सा नमक मिलाकर सुबह शाम पाँच दिन पिलायें। इससे नींद कम आयेगी।

अनिद्रा– 10 ग्राम सौंफ आधा किलो पानी में उबालें चौथाई पानी रहने पर छानकर गाय का 250 ग्राम दूध और 15 ग्राम घी दोनों स्वादानुसार चीनी मिलाकर पिलायें।

गौर वर्ण सन्तान– गर्भ काल में नौ माह तक खान–पान के बाद नित्य सौंफ चबाते रहने से सन्तान गौर वर्ण होती है।

कब्ज– (1). सोते समय आधा चम्मच पिसी हुई सौंफ की फंकी गर्म पानी से लेने से कब्ज दूर होती है।

(2). सौंफ, हर्र, शक्कर प्रत्येक आधा चम्मच मिलाकर, पीसकर गर्म पानी से फंकी लें।

ज्वर – तेज ज्वर होने पर सौंफ पानी में उबालकर दो–दो चम्मच बार–बार पिलाते रहने से ज्वर का ताप नहीं बढ़ता।

बवासीर अरक्तस्त्रावी– सौफ, और मिश्री दोनों पीसकर आधा चम्मच की फंकी दूध के साथ लें।

बवासीर रक्तस्त्रावी– सौफ, जीरा, धनियाँ प्रत्येक एक चम्मच दो कप पानी में उबालें। आधा पानी रहने पर छानकर उसमें एक चम्मच देशी घी मिलाकर पिलाने से रक्तस्त्रावी बवासीर में लाभ होता है।

पेट दर्द– सौंफ और सैंधा नमक पीसकर गर्म पानी से फंकी लें।

छाले– जिन लोगों के मुँह में छाले प्रायः होते रहते हैं वे खाने के बाद थोड़ी सौंफ लिया करें तो छाले नहीं होंगे।

पाचक– सौंफ और जीरा समान मात्रा में मिलाकर सेक लें। भोजन के बाद एक चम्मच नित्य चबायें।

खाँसी– दो चम्मच सौंफ, दो चम्मच अजवाइन आधा किलो पानी में उबालकर 2 चम्मच शहद मिलाकर छान लें। इसकी तीन चम्मच प्रति घण्टा पिलाने से बच्चों की खाँसी दूर हो जाती है।

स्मरण शक्तिवर्धक– सौंफ को हल्की–हल्की कूटकर ऊपर के छिलके उतारकर

छानलें। इस तरह अन्दर की मींगी निकालकर समान मात्रा में मिश्री मिलाकर पीस लें। एक चम्मच सुबह शाम दो बार ठण्डे पानी से या गर्म दूध से फंकी लें। इसके सेवन से स्मरण–शक्ति बढ़ती है, मस्तिष्क में शीतलता रहती है।

सौंफ सुगन्धित, उद्दीपक, वातहर और खाँसी की दवाओं में मिलाने से लाभ दायक है।

हल्दी

इसका लेटिन नाम–कुरक्युमा लौंगा है।

चोट लगना – (1). चोट लगने पर एक चम्मच हल्दी गर्म दूध के साथ पीने से दर्द, सूजन दूर होती है। शरीर की टूट–फूट दूर होती है। चोट लगे स्थान पर हल्दी को पानी में घोलकर लेप करें। चोट से कटकर रक्त बह रहा हो तो उस स्थान पर हल्दी भर दें, खुरन्ट लेकर ही उतरेगी। आँख में चोट लगने पर भी हल्दी का सेवन लाभदायक है।

(2). दो चम्मच पिसी हल्दी, चार चम्मच गेहूँ का आटा, एक चम्मच देशी घी, आधा चम्मच सैंधा नमक, थोड़ा–सा पानी मिलाकर हलुआ पकायें। चोट लगे स्थान पर इस हलुये की पट्टी बाँधे। आवश्यकतानुसार मात्रा घटा बढ़ा सकते हैं। आधा किलो उबलते हुए गर्म पानी में आधा चम्मच सैंधा नमक डालें, फिर हिलायें। इसमें एक चम्मच हल्दी डालें। बर्तन को उतारकर ढ़ककर रख दें। जब सेक करने जैसा हो जाये तो कपड़ा भिगोकर चोट वाले अंग का इससे सेक करें। दर्द में आराम मिलेगा।

(3). हड्डी टूटने पर हल्दी के नियमित सेवन से लाभ होता है।

(4). एक प्याज को पीसकर एक चम्मच हल्दी मिलाकर कपड़े में बाँध लें। इसे तिल के तेल में रखकर गर्म करें और इससे सेंक करें। कुछ देर सेकने के बाद पोटली खोलकर दर्द वाले स्थान पर बाँध दें।

दाँत रोग– हल्दी, नमक और सरसों का तेल मिलाकर नित्य मंजन करने से दाँत मजबूत होते हैं। हल्दी को आग पर भूनकर बारीक पीस लें। इसे दुखते दाँतों पर मिलने से दर्द दूर होता है। दाँतों के कीड़े मर जाते हैं। केवल हल्दी से मंजन करने से भी दाँत दर्द ठीक होता है। दर्द वाले दाँत के नीचे हल्दी का टुकड़ा दबा लें।

गर्भ न ठहरना– हल्दी की गाँठें पीसकर कपड़े से छानकर 6 ग्राम की पानी से फंकी जब तक मासिक धर्म चले, लेते रहने से गर्भ नहीं ठहरता।

गैस– पेट में जब वायु एकत्रित हो जाती है तो बड़ा दर्द होता है। ऐसी स्थिति में पिसी हल्दी और नमक 5–5 ग्राम गर्म पानी से लें, तुरन्त फायदा होगा।

आँखों में लाली और टीस जैसा दर्द हो, पीप आती हो तो एक चाय की चम्मच हल्दी पिसी हुई, आधा किलो पानी में इतनी उबालें कि चौथाई पानी रह जाये। फिर उसे बारीक कपड़े में छानकर सुबह, शाम आँख में डालने से लाभ होता है। यह हर तीसरे दिन ताजा बनाकर काम लें। आँखों में लाली, शोथ, पानी बहने पर हल्दी पानी में घिस कर किंचित गर्म करके पलकों

पर लेप करने से लाभ होता है।

गठिया होने पर हल्दी के लड्डू खाने से लाभ होता है।

घाव– पिसी हुई हल्दी घी या तेल में मिलाकर गर्म कर उसमें रुई भिगोकर घाव पर नित्य पट्टी बाँधने से घाव भर जाता है।

–मनोरमा, जनवरी 1975

खाँसी– खाँसी, गले, सीने में घबराहट हो तो हल्दी, गर्म पानी, नमक घोलकर पिलायें। हल्दी का छोटा–सा टुकड़ा मुँह में रखकर चूसते रहें। खाँसी नहीं आयेगी।

पुरानी खाँसी हो तो पिसी हुई हल्दी चौथाई चम्मच और शहद आधा चम्मच मिलाकर चाटें।

श्लेष्मा रेशा गिरता हो तो आधा चम्मच हल्दी की फंकी गर्म दूध से लें।

माता– माता से बचने के लिए हल्दी और इमली के बीज समान मात्रा में पीसकर चुटकी भर अर्थात् एक चने के बराबर नित्य सात दिन देने से माता नहीं निकलती।

प्रसव कष्टप्रद– होता हो तो 6 ग्राम हल्दी पिसी हुई गर्म दूध में मिलाकर सुबह–शाम कुछ दिन नवें महीने में पिलायें।

गृध्रसी– यह दर्द कूल्हे से एड़ी तक चिंखता हुआ लगता है। घी, मैदा लकड़ी, आमा हल्दी, मिश्री प्रत्येक दस ग्राम। ये सब पंसारी के यहाँ मिलती हैं। इनको पीसकर दूध और पानी प्रत्येक 250 ग्राम में उबालें। पानी जल जाने पर छानकर गर्म–गर्म रोगी को पिलायें और उढ़ाकर सुला दें। पसीना आने पर अन्दर ही अन्दर पोंछते रहें, हवा न दें। चार दिन में आराम हो जायेगा।

मधुमेह– यदि बार–बार और अधिक मात्रा में पेशाब आये, प्यास लगे तो 8 ग्राम पिसी हुई हल्दी नित्य दो बार पानी के साथ फंकी लें या आधा चम्मच शहद में मिलाकर चाटें। लाभ होगा।

सवा सौ ग्राम पिसी हुई हल्दी पाँच सौ ग्राम स्प्रिट में मिलाकर शीशी में कार्क लगाकर धूप में रख दें। दिन में तीन बार जोर से हिलायें। तीन दिन बाद छानकर फिर शीशी में रख दें। यह हल्दी की टिंचर है। इसके उपयोग–सफेद दागों पर नित्य तीन बार लगायें, लाभ होगा।

पित्ती– (1). पिसी हुई हल्दी एक चम्मच, गेहूँ का आटा दो चम्मच, घी एक चम्मच, चीनी दो चम्मच, आधा कप पानी में डालकर हलुआ बना लें। इसे ठण्डा होने पर नित्य प्रातः खायें, ऊपर से एक गिलास दूध पीयें। इससे पित्ती मिट जाती है।

(2). आधा चम्मच हल्दी, आधा चम्मच मिश्री या शहद मिलाकर दो बार नित्य लें। पित्ती निकलना बन्द हो जायेगी।

सुजाक (लिंगेन्द्रिय में घाव)– हो तो 8–8 ग्राम पिसी हुई हल्दी की फंकी पानी के साथ नित्य तीन बार लें।

मुँह के छाले – 15 ग्राम पिसी हुई हल्दी एक किलो पानी में उबालें, ठण्डा होने पर सुबह–शाम गरारे करने से लाभ होता है।

स्तनों में दर्द हो तो हल्दी की गाँठ को पानी में घिसकर लेप करने से दर्द दूर हो जायेगा।

कोढ़, कण्ठमाला– 8 ग्राम हल्दी की फंकी सुबह–शाम दो बार लें। हल्दी की गाँठ को पत्थर पर पानी में घिसकर लगायें। कुछ दिनों तक नित्य सेवन करने से यह रोग ठीक हो जायेगा।

दाद– तीन बार दिन में और एक बार रात में सोते समय हल्दी का लेप करते रहने से दाद ठीक हो जाता है।

खुजली गीली – शरीर पर कहीं भी या हाथ–पैरों की अँगुलियों के गस्सों में मवाद भरी पीली फुन्सियाँ निकलें, खुजली हो तो एक चम्मच हल्दी, एक कप गर्म दूध, चौथाई चम्मच देशी घी, स्वाद के अनुसार शक्कर डालकर सुबह–शाम पीयें। 250 ग्राम सरसों के तेल में दूब का रस 500 ग्राम, आधा पाव हल्दी पानी डालकर पीसकर सबको लोहे की कड़ाही में डालकर मिला लें तथा गर्म करें। जब उबलने लगे तो छान कर बोतल भर लें। इसे मलने से खुजली ठीक हो जाती है। फुन्सियों को साफ करके लगाने से फुन्सियाँ सूख जाती हैं।

जुकाम– जुकाम में कफ गिरता हो तो नित्य तीन बार 2 ग्राम हल्दी की फंकी गर्म पानी से लें। जुकाम में आग पर हल्दी डाल कर धुआँ सूँघने से नाक से पानी गिरने लगता है जो लाभ करता है। ❑❑❑

प्रत्येक आत्मा अनन्त है। हमारे पैरों तले रेंगते रहने वाले क्षुद कीट से लेकर महत्तम और उच्चतम साधु तक में वह अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता और सभी गुण अनन्त परिमाण में मौजूद हैं। भेद केवल अभिव्यक्ति की न्यूनाधिक मात्रा में है। कीट में उस महाशक्ति का थोड़ा ही विकास पाया जाता है, तुममें उससे अधिक और किसी दूसरे देवोपम पुरुष में तुमसे भी कुछ अधिक शक्ति का विकास हुआ है; भेद बस इतना ही है, परन्तु है सभी में वही एक शक्ति।

पतंजलि कहते हैं –'ततः क्षेत्रिकवत्' (4/3)। किसान जिस तरह अपने खेत में पानी भरता है। किसी जलाशय के वेग से खेत के बह जाने के भय से उसने नाली का मुँह बन्द कर रखा है। जब पानी की जरूरत पड़ती है, तब द्वार खोल देता है, पानी अपनी ही शक्ति से उसमें भर जाता है। पानी आने के वेग को बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि वह जलाशय के जल में पहले से ही विद्यमान है। इसी तरह हममें से हर एक के पीछे अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता, अनन्त सत्ता, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द का भण्डार परिपूर्ण है, केवल यह द्वार – यही देहरूपी द्वार हमारे वास्तविक रूप के पूर्ण विकास में बाधा पहुँचाता है।

– स्वामी विवेकानन्द

योग सिद्ध आश्रम पुरानी मण्डी में विशाल योग शिविर का आयोजन

–हेमराज

पुरानी मंडी में पावन व्यास नदी के तट पर स्थित योग सिद्ध आश्रम कई कारणों से अनुपम है। इसमें धरातल पर ध्यान कक्ष है। यहाँ मंद–मंद स्वर से बंहती नदी, प्रातः काल में पक्षियों का मधुर कलरव, शहर के कोलाहल और वायु प्रदूषण से रहित वातावरण में मन स्वतः ही एकाग्र हो जाता है। इसमें फिर योग शिविर का आयोजन सोने पर सुहागे सा काम कर गया। यह विशाल योग शिविर 6 जून से 19 जून 2017 तक श्री सिद्धगुफा, संवाई के व्यवस्थापक डॉ. दासलाल जी महाराज के तत्वाधान में उत्साह व उल्लासपूर्वक मनाया गया।

यूँ तो योग शिविर इस आश्रम में प्रतिवर्ष ही मनाया जाता है किन्तु इस बार विशेष बात ये हुई कि स्थानीय लोगों के अलावा सुदूर क्षेत्रों से जैसे बनारस, मण्डल से श्री प्रदीप एवं संजय कुमार, हरियाणा से श्री जसवंत सिंह, शमशेर सिंह आदि व अन्य सागर मध्य प्रदेश, नागपुर, रायबरेली गंगापुर सिटी से मा.घनश्याम, दिल्ली, चण्डीगढ़, बिहार, राजस्थान आदि से अपने–अपने मण्डल सदस्यों सहित सैकड़ों गुरुभक्तों ने इसमें अतिशय उत्साह व उल्लास से भाग लिया।

पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार प्रातः 5 बजे आरती ध्यानाभ्यास का समय रहता था। आचार्य जी आरती के तुरन्त पश्चात् सभी साधकों को ध्यान में बैठा कर स्वयं भी ध्यानस्थ हो जाते थे।

इस समय का दृष्य अद्भुत होता था। कई साधक शीघ्र ही शून्य अवस्था को प्राप्त हो जाते थे। यह अभ्यास लगभग 1 से 1.1/2 घंटा तक चलता था। उसके पश्चात 6.30 से 7.30 बजे का समय योगासनों का रहता था। आचार्य जी स्वयं सबसे आसन करवाते थे और प्रत्येक आसन का लाभ बताते हुए इसे ठीक तरह से करने में सहायक भी होते थे। सौ से अधिक साधक एक साथ आसन करते हुए नजर आते थे। 7.30 से 8 बजे का समय प्राणायाम का रहता था। लुधियाना से आए ब्रह्मचारी श्री विरेन्द्र स्वरूप शास्त्रीय प्रामाणिकता सहित प्राणायाम की प्रत्येक क्रिया का तात्पर्य व इससे होने वाले लाभों से अवगत करवाते थे। अनुलोम–विलोम, भस्त्रिका कृपाल भाति आदि कितनी ही प्राणायाम की विधायों का लाभ समझाते हुए इन्हें दर्शाया भी। इसके अतिरिक्त शारीरिक रोगों से छुटकारा पाने हेतु प्राणायाम की कुछ विशेष विधाओं के बारे में भी अवगत करवाया।

प्रातः 9 बजे श्री मद्भगवद्गीता का सस्वर पाठ श्री आचार्य जी द्वारा करवाया जाता था। प्रात:काल के समय में समवेत स्वर से गाए जा रहे श्लोक वातावरण को स्वर्गीय एवं सम्मोहक बना देते थे। राह चलते पथिक भी इसे सुनकर पल भर के लिए ठिठंक जाते थे। आचार्य जी तत्पश्चात प्रत्येक श्लोक की सीधे और सरल शब्दों में व्याख्या इस प्रकार करते थे कि उसका अर्थ स्वतः ही स्पष्ट हो जाता था। इन दिनों में आचार्य जी ने भगवद्गीता के 5 वें से 8 वें अध्याय का पाठ इनके श्लोकों का गूढ़ अर्थ समझाते हुए कराया। 5 वें अध्याय में कर्म सन्यास योग के विषय में श्री आचार्य जी ने बताया कर्म करते हुए भी उसमें आसक्ति नहीं रहनी चाहिए। जो द्वन्द्वों से मुक्त है, जिसकी बुद्धि स्थिर है, जो प्रिय वस्तु के प्राप्त होने पर हर्षित नहीं होता और अप्रिय के प्राप्त होने पर दुखी नहीं होता, जिसकी बुद्धि हमेशा स्थिर रहती है वही सही अर्थों में ऐसा योगी कहा जाएगा जिसने कर्मों का सन्यास योग प्राप्त कर लिया है। इसी प्रकार छठे अध्याय में अर्जुन श्री भगवान कृष्ण से अपनी शंका का समाधान चाहता है कि जो योग पथ से किसी कारण हट जाता है उसकी मरने के बाद क्या स्थिति होती है। इस पर भगवान ने उसे समझाया कि योग पथ पर चला हुआ कदम कभी व्यर्थ नहीं जाता। पूर्णता को प्राप्त न होने पर भी उसका अगला जन्म अच्छे कुल और समृद्ध परिवार में होता है जहाँ से पुनः साधन करने पर उसे अपनी मंजिल मिल जाती है।

सातवें और आठवें अध्याय में आचार्य जी ने समझाया कि योग प्राप्ति के मार्ग में ईश्वर की माया आवरण डाल देती है। इसे जानकर भगवदभक्ति के द्वारा जो इसे हटाने का प्रयत्न करता है, उसे भगवान अवश्य ही कृतकृत्य कर देते हैं। इसी प्रकार अक्षर ब्रह्म योग के बारे में उन्होंने बताया कि अंतिम समय में जो साधक भक्ति और योग के बल से भ्रू मध्य में प्राण स्थापित करते हुए मुझ में ध्यान लगाता है वह मृत्यु के पश्चात मुझे ही प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं। सायं 4 से 6.30 बजे का समय भक्ति-संगीत का रहता था। कुराना हरियाणा से आए हुए राजवीर एवं बनारस के श्री प्रदीप एवं उनके मंडलों की प्रस्तुति अत्यन्त उत्तम थी। तत्पश्चात श्री आचार्य द्वारा प्रातः किए गए गीता-पाठ के विषय में साधकों का शंका समाधान किया जाता था। उनके प्रवचन ठीक 6.30 बजे प्रारम्भ होते थे जो रात्रि 8 बजे तक चलते थे। इसमें उन्होंने कई योग साधकों की शंका का समाधान किया एवं सारगर्भित शब्दों द्वारा श्री मद्भगवद् गीता के गूढ़ रहस्यों को सरल शब्दों में समझाया। उनके प्रवचनों के समय हाल में एक सूई गिरने का भी शब्द नहीं होता था। आश्रम के नैसर्गिक वातावरण में ध्यानाभ्यास की ओर रूचि स्वतः ही हो जाती है। 8 बजे आरती के पश्चात सभी अपने-अपने घरों की ओर प्रस्थान कर जाते थे।

आचार्य जी ने पतंजली अष्टांग योग के बारे में विस्तार से बताया। इनमें पांच अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तो बाहरी अंग व धारणा, ध्यान, समाधि आभ्यान्तर अंग कहलाते हैं। आचार्य जी ने विस्तार से यम-नियम से समाधि तक के सफर को बहुत सुगमता

से समझाया। इसमें भी उन्होंने ध्यान योग पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार यदि मनुष्य सैंकड़ों पापों का ढेर खड़ा हो जाए तो उसके पापों के पहाड़ के पहाड़ ध्यानयोग द्वारा जल जाते हैं।

आचार्य जी ने बार–बार सचेत किया कि जब तक शरीर स्वस्थ है, तब तक डट कर ध्यान अभ्यास एवं योग साधना कर लेनी चाहिए एवं गुरु आज्ञानुसार प्रातः 5 से 7 बजे तक गुरु मंत्रजाप, ध्यान कर लेना चाहिए, इसी से हमारे सभी कष्टों का निवारण हो पाएगा। मंडी से पुराने गुरु भाई श्री हरि सिंह ने भी बीच–बीच में अपने अनुभव सांझा करते हुए गुरुदेव के विषय में विचार व्यक्त किए। 10 जून 2017 को विशाल ब्रह्मभोज का आयोजन किया गया था।

इस योग शिविर में बाहर से आए गुरु भाइयों ने अत्यन्त उत्साह से भाग लिया और सभी ने मिल–जुल कर इस आयोजन को सफल बनाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी जिसके फलस्वरूप यह योग शिविर अद्‌भुत बन गया।

11 जून 2017 को प्रातः श्री आचार्य जी को नम आँखों से भावभीनी विदाई देकर सभी गुरु भक्त भाई–बहिनें अपने–अपने स्थान पर वापिस चले गए।

"जय गुरुदेव"

❑❑❑

सर्वत्र ईश्वर की छवि निहारते रहना ज्ञानयोग है। निश्चल भाव से अपने को ईश्वर के हाथ सौंप देना भक्तियोग है और ईश्वर भाव से सभी प्राणियों के कल्याण के लिए निष्काम कर्म करते रहना कर्मयोग है। यह तभी सम्भव है जब अन्तरात्मा के दिव्य सूत्र में बुद्धि, मन और इन्द्रियों को गूँथ दिया जाय। ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण समस्त प्राणियों के हृदय में सदा विराजमान रहते हैं। अतः मन के द्वारा विषयों, धन एवं प्रभुत्व की आसक्ति का मानसिक त्याग कर पूर्ण समर्पण भाव से हृदयस्थ परमात्मा का चिंतन एवं आश्रय ग्रहण करने से शाश्वत् शान्ति सुलभ होगी।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, आलस्य एवं अहंकार का मूल कारण है देहाभिमान, उसी के कारण मनुष्य दुःखी है, अतः आत्मनिष्ठ बनो।

योग-आसन

मत्स्यासन

मुक्त पद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत,
कर्पराभ्यां शिरोवेष्ट्य मत्स्यासनं तुरोगदर।

अर्थात् मुक्त पद्मासन लगाकर सीधा लेट जायें व अपने दोनों हाथों को कोहनी से आगे के हिस्सों को परस्पर वेकृित करके शिर के नीचे लगा लें। यह सर्व रोग नाशक मत्स्यासन है। अथवा अपने दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़कर कोहनियाँ जमीन में लगाकर पेट और छाती को ऊपर की ओर निकाल कर गर्दन को मोड़कर पीछे की ओर उत्तान देने की भी प्रणाली प्रचलित है।द्धमत्स्यासन का यह रूप सर्वसाधारण के अभ्यास के लिए अत्यन्त सरल है एवं इस आसन को लगाकर शरीर के सन्तुलन को ध्यान में रख कर यदि जल पर इसी प्रकार लेटे रहने का अभ्यास कर लें तो आराम से लेटा जा सकता है। बड़ा आनन्द आयेगा। वृत्ति स्वतः ही एकाग्र हो जायेगी। जो व्यक्ति तैरना न जानता हो उसे ही थोड़े जल में इसका अभ्यास करना चाहिए।

समय - आधे मिनट से पाँच-पाँच सैकेन्ड बढ़ाते हुए दो मिनट तक।

लाभ - उर विकारों के लिए लाभप्रद है।

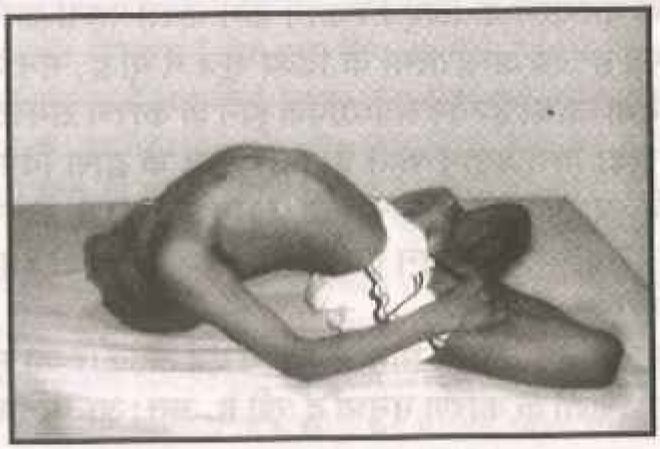

जड़ी–बूटी चिकित्सा : युग की आवश्यकता

पं. लीलापत शर्मा

एक बार ब्रह्मा जी ने जीवक ऋषि को आदेश दिया कि पृथ्वी पर जो पत्ता पौधा, वृक्ष, वनस्पति व्यर्थ दिखे, तोड़ लाओ। ग्यारह वर्ष तक पृथ्वी पर घूमते रहने के बाद ऋषिवर लौटे और ब्रह्मा जी के समझ नतमस्तक होकर बोले– प्रभो! इन ग्यारह वर्षों में पूरी पृथ्वी पर भटका हूं, प्रत्येक पौधे के गुण–दोष को परखा, पृथ्वी पर एक भी ऐसा वृक्ष नहीं मिला जो किसी न किसी व्याधि के उन्मूलन में सहायक न हो। इस उदाहरण से वृक्ष, वनस्पतियों की औषधीय गुणवत्ता का भान होता है।

आज सभ्यता की घुड़दौड़ आपाधापी में मनुष्य को स्वास्थ्य के विषय में इस सीमा तक परावलंबी बना दिया है कि वह प्राकृतिक जीवन क्रम भी भुला बैठा है। फलतः आए दिन रोग–शोकों के विग्रह खड़े होते रहते हैं व छोटी–छोटी व्याधियों के नाम पर अनापशनाप धन नष्ट होता रहता है। मनुष्य अंदर से खोखला होता चला जा रहा है। जीवनी शक्ति का चारों ओर अभाव नजर आता है। आहार–विहार में समाविष्ट कृत्रिमता ने जिस प्रकार जिस सीमा तक शरीर के अंग अवयवों को अपंग और असमर्थ बनाया, उसी प्रकार चिकित्सा क्रम भी बनते चले गए। पूर्वकाल में आयुर्वेद ही स्वास्थ्य संरक्षण का एकमात्र माध्यम था। धीरे–धीरे बृहत्तर भारत में समाविष्ट अन्य संस्कृतियों के साथ अन्य पद्धतियां भी आईं और आज चिकित्सा के नाम पर ढेरों पद्धतियां प्रयुक्त होती हैं। इसे दुर्योग ही कहेंगे कि आयुर्वेद जैसी विशुद्ध चिकित्सा प्रणाली पर भी गत दशाब्दियों में वज्रपात हुआ है। इसे भी आधुनिक बनाने की ललक में आतुर गिने चुने विद्वानों ने इसकी उपयोगिता और भी कम कर दी है। आज जहां आयुर्वेद के योगों पर से लोगों का विश्वास घटता चला जा रहा है, वहीं तुरंत ठीक होने की आवेशपूर्वर्ण जल्दबाजी ने उन्हें ऐलोपैथी का गुलाम बना दिया है। अनेक प्रकार की पद्धतियां प्रचलित होते हुए भी चारों ओर से एक ही मांग है कि वैकल्पिक चिकित्सा प्रणाली खोज निकाली जाए, मानवता को स्वास्थ्य संकट से मुक्ति दिलाई जाए।

यह विडंबना ही है कि जिन वनौषधियों के प्रयोग के कारण भारतवर्ष की विशिष्टता एवं संपन्नता आंकी जाती थी, उनके प्रयोग को भारतवासी ही भुला बैठे थे। पश्चिम, जर्मनी, हंगारी, सोवियत रूस, इण्डोनेशिया, चीन, जापान देशों में जहां जड़ी–बूटियों से चिकित्सा पर अनुसंधान कार्य होकर सफल प्रयोग भी किए जा रहे हैं, वहां इस हरीतिमा संपदा की जानकारी सारे विश्व को देने वाले भारत के चिकित्सक मनीषी स्वयं पाश्चात्याभिमुखी होते चले जा रहे हैं। आयुर्वेद, वनौषधि संपदा की गरिमा भुला देने का कारण यदि खोजा जाए तो इसे मात्र बौद्धिक परावलंबन ही कहा जाएगा। वैक्सीन, मारक, एण्टीबायोटिक्स, रेडीएशन, तथाकथित स्वास्थ्य सवंर्धक विटामिन, हारमोन के घातक दुष्परिणामों पर सभी विचारशीलों ने गहराई से सोचा है।

वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि यदि कोई निरापद जीवनी शक्ति संवर्धक औषधियां हो सकती हैं तो वे मात्र प्राकृतिक रूप में पाई जाने वाली वनौषधियां ही हैं। आहार–विहार के सामान्य नियमों का पालन करते हुए श्रम या व्यायाम को जीवन में स्थान देते हुए मनुष्य सहज ही अपने अंतःकरण की सामर्थ्य को बढ़ा व प्रखर बना सकता है। यदि आधि–व्याधियों से रोकथाम हेतु आवश्यकता आ ही पड़े तो चारों ओर सहज ही उपलब्ध वनौषधियों से वह अपनी चिकित्सा भी करता रह सकता है। यह पद्धति हानि रहित तो है ही, आर्थिक दृष्टि से भी हमारे जैस विकासशील राष्ट्र के लिए एक मात्र अवलंबन भी है।

शरीर का धर्म है अपनी रक्षा के लिए व्यवस्था बनाना। जीवनी शक्ति के रूप में उसे एक सुरक्षा संस्थान मिला हुआ है। रक्त के श्वेत कण एवं इम्यून संस्थान सुरक्षा सेना, सीमा आरक्षी बल का काम करते हैं। बाह्य आक्रमणकारी जीवाणु विषाणु पहले मानव शरीर में सुरक्षा शक्ति की कमजोरी का जायजा लेते हैं। उनकी घातक सामर्थ्य में वृद्धि शरीर की कमजोरी के साथ बढ़ती जाती है एवं शरीर रोगी होता जाता है। रोग से निवृत्ति भी इस पर निर्भर करती है कि कितना शीघ्र विकृत द्रव्यों का निष्कासन होता है। गुर्दे छलनी की तरह रक्त में से विजातीय द्रव्यों को निकाल कर मूत्र के रूप में बाहर फैंकते हैं। यही गुर्दे जब रोगग्रस्त हो जाते हैं तब सारा विजातीय द्रव्य शरीर में एकत्र होता चला जाता है। ऐसे व्यक्ति जीवित लाश की तरह अपनी यात्रा खींचते हैं, न वे श्वांस ले पाते हैं न खाना ठीक से खा पाते हैं। बाह्य जीवाणु, विषाणुओं के घातक प्रभाव उन्हें शीघ्र मृत्यु के मुख में ले जाता है। अपाचन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न विकार द्रव्य जब एकत्र होते चले जाते हैं, आहार विहार में व्यतिक्रम आ जाता है। प्रकृति के अनुकूल दिनचर्या का निर्धारण नहीं हो पाता है तो रोगों की बाढ़ सी आ जाती है।

इस मूल आधार को समझने के बाद चिकित्सा व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित कर सकना संभव है। किसी भी लक्षण को दबाने के बजाय उसे जन्म देने वाले कारण को जड़ से मिटाना ही श्रेयस्कर है। तुरंत लाभ की दृष्टि से तो यही उचित लगता है कि दृष्टिगत लक्षण को मिटा दिया जाए। गंदगी पर मिट्टी डालने से वह आंखों से ओझल तो हो सकती है पर नष्ट नहीं होती। दर्द को वेदना नाशक औषधियों से उस समय तो मिटाया जा सकता है, लेकिन मूल रूप में बैठे रोग को यदि समूल नष्ट नहीं किया गया तो वह नए रूप में अधिक तीव्रता के साथ उभर कर आ सकता है। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि चिकित्सा पद्धति के अंतराल में छिपे अंधविश्वास को जड़ से निकाल फेंक कर अब जनमानस को अपनी दृष्टि का परिमार्जन करना ही चाहिए। जो श्रेष्ठ है वह तो ग्राह्य है पर सामयिक लाभ का दर्शन किसी भी मूल्य पर जीवन में नहीं उतारा जा सकता।

जहां तक सिद्धांतों, रोग निदान परीक्षण का सवाल है, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को धन्यवाद दिया जाना चाहिए और उसकी उपलब्धियों की प्रशंसा भी की जानी चाहिए। उपचार पक्ष से असहमत होते हुए अब आवश्यकता आ पड़ी है कि जड़ी–बूटियों के द्वारा उपचार पद्धति का पुनर्जीवन किया जाए। इनके उपयोग का विज्ञान सम्मत ढंग जनमानस को समझाया व

हृदयंगम कराया जाए। वनस्पतियों का विशाल जगत हमें प्राकृतिक जीवन क्रम को अपनाने हेतु सतत प्रेरित, आमंत्रित करता है। आवश्यकता उनका महत्व समझने भर की है।

वनस्पति जगत के कई भेद हैं। एक वे जलाने, खाद या उपकरण बनाने के काम आती हैं। दूसरी वे जिन्हें खाकर प्राणी अपना गुजारा करते हैं, मनुष्यों से लेकर पशुपक्षी वर्ग के जीवधारी इसी श्रेणी में आते हैं। किसे पत्ती, किसे कंदमूल, किसे बीज अनुकूल पड़ते हैं, यह रूचि विशेष की बात है। यह सभी वर्ग वनस्पतियों के ही हैं। तीसरा वर्ग औषधियों का है वे घास–पात जैसी दिखती तो हैं पर अपने विशेष गुण के कारण रोग निवारण आरोग्य वर्धन एवं परिशोधन के काम आती है। चिकित्सा जगत में इन्हीं की प्रमुखता है। यों उसमें खनिज एवं विषों का रूपांतरण भी सम्मिलित हो गया है, किंतु बाहुल्य चिकित्सा क्षेत्र में वनस्पतियों का ही है। उन्हीं को चूर्ण, सत्व, गोली, अवलेह, अर्क, आसव आदि के रूप में एकाकी अथवा सम्मिश्रणों के साथ प्रयोग किया जाता है। यह वनस्पति का औषधि पक्ष है। विधाता द्वारा मनुष्यों को दिए गए अनेक उपहारों में वनौषधियों को भी एक ऐसा ही वरदान कहा जा सकता है। जिसने शारीरिक व्याधियों और मानसिक व्याधियों के निवारण में देवताओं जैसे अनुग्रह प्रस्तुत किए हैं।

आहार एवं औषधीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाली वनस्पतियां अपने आप में पूर्ण हैं। उनमें से प्रत्येक की संरचना अनेक यौगिकों, क्षारों रसायनों और खनिजों के सम्मिश्रण से हुई हैं।

प्राणियों की आदतों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि वे जिस वनस्पति वर्ग पर निर्भर हैं, उतने से ही अपना काम चला लेते हैं। अनेक सम्मिश्रणों की फिराक में नहीं फिरते। गाय, घोड़ा, वर्ग के प्राणी घास पसंद करते हैं। ऊंट, बकरी जैसे पत्तों के सहारे निर्वाह करते हैं। बंदर को फल पसंद हैं तो चिड़िया को बीज अच्छे लगते हैं। इनमें हर एक को कई–कई वनस्पतियों की तो छूट है कि एक के न मिलने पर दूसरे के सहारे काम चल सके पर ऐसा नहीं होता कि कोई जब भी कुछ खाए तो कई–कई को खोज कर उनकी चटनी बनाए, तब कहीं उन्हें गले उतारे।

शास्त्रोक्त एकौषधि पद्धति को अब नए सिरे से पुनर्जीवन देना होगा। आयुर्वेद के कर्णधारों ने एक रोग में एक समय में एक ही जड़ी बूटी देने का नियम निर्धारित किया था। सम्मिश्रणों की बात तो बहुत बाद में सूझी। जड़ी बूटियों की संख्या अनगिनत है। इतने पर भी गुण धर्म के हिसाब से उनके वर्ग अधिक नहीं हैं। शुभारंभ की दृष्टि से यही सुविधाजनक पड़ेगा कि जो औषधियाँ सर्वत्र उगती हैं उनमें से एक का सीमित संख्या में इस प्रकार चुनाव किया जाय कि उसमें रोग निवारण के लिए आवश्यक सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो सके।

(विभूति फीचर्स से साभार)

❑❑❑

दीप जलते रहे

–डॉ. छोटे लाल दीक्षित

सृष्टि के अनन्त जीवों में मनुष्य ही ऐसा जीव है जिसमें अपने को अतिक्रमण करने की क्षमता है। पशु, पक्षी, कीट, पतंग अथवा जलचर, थलचर, नभचर सभी जीव–जन्तुओं का विकास प्राण तक ही हुआ है। प्रकृति उन्हें अपने अनुसार चलाती है। वे सब कुछ अपनी सहज प्रवृत्तियों के अनुसार करते हैं। मनुष्य को मन और बुद्धि प्राप्त है जिनके कारण वह अपना विकास करने को स्वतंत्र है। यही स्वतन्त्रता उसे सुख–सुविधा, भोग–विलास, भोग–वैभव, लीला–विलास की प्रेरणा देकर उससे उपभोग की अनन्त वस्तुओं का संग्रह करवाती है। इस संग्रह के लिए उसे झूठ, फरेब, आडम्बर, अनाचार, भ्रष्टाचार के मार्ग अपनाने पड़ते हैं जो आज की उपभोक्तावादी संस्कृति का यथार्थ है। सामान्य व्यक्ति इसी यथार्थ में डूबा रहना चाहता है, यही उसे प्रिय होता है। लेकिन मनुष्य की स्वतन्त्रता का एक दूसरा पक्ष भी है जो उसे श्रेय की ओर ले जाता है। जिसके द्वारा वह न केवल त्याग, अपरिग्रह और लोक–संग्रह को अपनाता है वरन् विश्व मैत्री और विश्व–प्रेम में डूबकर समाज, राष्ट्र और मानव–मात्र के लिए सर्वस्व समर्पित कर देने के लिये तत्पर हो जाता है तथा मन–बुद्धि का अतिक्रमण करके भागवत चेतना के साथ एकाकार हो जाता है, अपने भीतर के देवत्व का विकास करके भगवान बन जाता है। उसके समस्त कार्य भगवान के कार्य बन जाते हैं और उसकी समस्त इच्छाएं भगवान की इच्छाएं हो जाती हैं। स्वतन्त्रता के इसी पक्ष को विकसित करना मानव जीवन का आदर्श और लक्ष्य है।

उपभोक्तावाद से ओत–प्रोत मूल्यहीन जीवन ने सामाजिक चेतना को इतना विकृत कर दिया है कि संभ्रान्त प्रतिष्ठित शिक्षित और समाज का नेतृत्व करने वाले व्यक्ति भी मूल्यों और आदर्शों की बात सुन कर नाक–भौं सिकोड़ने लगते हैं। कभी नाना जी देशमुख महाविद्यालय के प्रवक्ताओं के बीच लोक–संग्रह पर बोल रहे थे। किसी प्रवक्ता ने अन्यमनस्क भाव से कहा–ये आदर्श की बातें हैं। जीवन में इनसे कोई लेना–देना नहीं। उच्च शिक्षा प्राप्त महाविद्यालय के जिन शिक्षकों से आदर्शों को जीवन में उतारने की अपेक्षा की जाती है उनको भी आदर्श विजातीय लगते हैं और आदर्श वादी व्यक्ति अतीत जीवी प्रतीत होते हैं क्योंकि वे आधुनिकता की चका–चौंध में उपभोग की लालसा से प्रेरित संग्रह की भावना से ओत–प्रोत रहते हैं। उनके लिये आदर्श अवरोधक हैं। विडम्बना यह है कि सद्गुणों और आदर्शों के प्रति उनके मन में अनास्था और उपेक्षा तो होती ही है– वे अपने आचरण, व्यवहार और वाणी द्वारा समाज में आदर्शों के प्रति अवहेलना का भाव जगाते हैं। यह बहुत घातक है। उपभोग, संग्रह और विलास में डूबे व्यक्ति और समाज को रास्ता दिखाने वाले दीपक आदर्श ही हैं। ये दिए जलते रहने चाहिए इनकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। इनके प्रति निष्ठा और श्रद्धा होनी चाहिए। इनको बुझाने से अंधेरा गहरायेगा। तब रास्ता दिखाने वाला कोई न रहेगा। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं:–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
सः सत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

अर्थात् श्रेष्ठ जन जिस प्रकार का आचरण करते हैं अन्य लोग वैसा ही करते हैं। वे जो प्रमाण प्रस्तुत करते हैं लोक उनका अनुसरण करता है। इसलिये समाज के श्रेष्ठ शिक्षित सम्भ्रान्त व्यक्तियों

को इस दिशा में बहुत सावधान रहना चाहिए। आदर्श कभी अप्रासंगिक नहीं होते। उपभोग और संग्रह सुख यथार्थ कितना भी हो, कभी वरेण्य नहीं होता। सोचिए? हम अपनी भावी पीढ़ी को क्या देकर जा रहे हैं? भोग और संग्रह अथवा सद्गुण और लोक-संग्रह। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है:-

भोगैश्वर्य प्रसक्तानां तयापहृत चेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।।

अर्थात् जो भोग और ऐश्वर्य में आसक्त हैं तथा जिनका अन्तःकरण इनके द्वारा हर लिया गया है उन्हें परमात्मा की प्राप्ति का निश्चय ही नहीं होगा, परमात्मा की प्राप्ति तो दूर की बात है। सामान्य व्यक्ति आदर्शों की उपेक्षा करें और यथार्थ को सब कुछ मानें तो समाज की अधिक हानि नहीं होती क्योंकि वे समाज के मानक नहीं होते। फिर भी मनुष्य अपने विचार, भावना और कर्म से एक सूक्ष्म जगत का निर्माण करता है, एक वातावरण बनाता है जो उसके साथ सदैव रहता है। जब व्यक्ति आदर्श, उदार, निःस्वार्थ एवं परोपकारी होता है तो अपने चारों ओर एक विशेष प्रकाशमय वातावरण बनाता है जो सबको प्रभावित करता है।

हमारी परम्परा में संतों को भगवान का प्रतिरूप माना गया है। उनसे मिलने का सुख स्वर्ग और मुक्ति के सुख से बड़ा माना गया है। कबीरदास ने कहा- **कबीर संगति साधु की कदे न निफल होइ।** और तुलसीदास ने कहा- **संत मिलन सम सुख जग नाहीं।** संतों की ये उक्तियां उनके जीवन के व्यापक अनुभव की देन हैं। मनुष्य को अपनी भौतिक, प्राणिक और मानसिक चेतना के निम्न स्तरों से मुक्ति पाने के लिये, उनमें आत्मा के प्रकाश को भरने के लिए, भगवत् प्रेम में निरन्तरता बनाए रखने के लिए सन्तों से सतत् प्रेरणा लेने की आवश्यकता होती है। संत की कृपा से विवेक जगता है, तभी परमात्मा का बोध होता है, बोध होने पर श्रद्धा और विश्वास में दृढ़ता आती है और प्रभु के प्रति भक्ति बढ़ती है।

श्रीअरविन्द ने आदर्शों के सम्बन्ध में कहा है-बहुत से लोग हमें यह सलाह दे रहे हैं कि हम आदर्शों के पचड़े में न पड़ें, जो काम हमारे हाथों के नजदीक है उसे निबटाते चलें। हमें श्रद्धा और आशा की बातें न करनी चाहिए और न ही आदर्शवादी स्वप्नों में खो जाना चाहिए। पर आदर्श के बिना काम का मूल्य ही क्या है? अगर कार्य के पीछे प्रेरणादायी शक्ति न हो तो वह निष्फल होगा। मनुष्य साधारण रूप से अपने स्वार्थपूर्ण दैनिक कार्यों में लगा रहता है। उसे महान कार्यों की प्रेरणा देने के लिए उसके आध्यात्मिक स्व को बुलाते रहना पड़ेगा, उसके अन्दर नैतिक उत्साह जगाए रखना होगा। यह आदर्शों के प्रति निष्ठा जगाने से ही सम्भव है। भगवान बुद्ध, ईसा, शंकराचार्य और विश्व के अनेकानेक महान पुरुषों ने प्रेरणा जगाने का ही कार्य किया और महान क्रांतियां की। उन्होंने न कारखाने लगाएं और न गरीबों को दान बांटा। अन्तः प्रेरणा जगाना ही मुख्य काम है। आदर्शों को व्यक्त करने वाले शब्द सूखी हड्डियों में सांस भर देते हैं जिससे वे आदर्शों के लिए संघर्ष करने को खड़ी हो जाती हैं।

मन्त्र दृष्टा ऋषियों के ये कथन शाश्वत् सत्य हैं कि जो अज्ञानी हैं अविद्या की उपासना करते हैं, वही अंधेरे में नहीं जाते हैं वरन जो विद्या की उपासना करते हैं, ज्ञानी हैं वे भी घने अंधकार में डूबते हैं। आज उच्च शिक्षा प्राप्त शिक्षकों, समाज का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों और समाज के प्रति सद्भाव रखने वाले सभी लोगों को इसका निरन्तर ध्यान रखना चाहिए कि कहीं वे सद्गुणों और आदर्शों की अवहेलना करके स्वयं अंधकार में तो नहीं जा रहे हैं और समाज को अपने आचरण द्वारा अंधेरे के गर्त में तो नहीं डुबो रहे हैं। आदर्श हमारे दीपक हैं। इन्हें निरन्तर जलने दें।

इनकी अवहेलना न करें, इन्हें स्वप्न और कल्पना मान कर न छोड़ें। इनके महत्व को कम न होने दें। इनके प्रति निष्ठा और विश्वास बनाये रखें। इनको बुझने न दें। इनके बुझ जाने पर प्रकाश की किरण देकर रास्ता दिखाने वाला कोई न रहेगा। इनके अभाव में हमारी भावी पीढ़ी में अपने भीतर की दिव्यता और भागवती चेतना को जगाने की अभीप्सा ही समाप्त हो जायेगी–तब क्या विज्ञान के चमत्कार और गणित के फार्मूले उस श्रेय को प्राप्त करने की प्रेरणा देंगे। वह प्रेय की भट्ठी में जल जायेगी। वह अपने को अतिक्रमण करने के लक्ष्य को भूल जायेगी। और अपने कर्म भावना, विचार के द्वारा भगवान को नहीं शैतान को व्यक्त करने लगेगी।

❑❑❑

● आश्रम समाचार

विश्व योग दिवस पर संवाई आश्रम में विशेष कार्यक्रम

श्री सिद्धगुफा संवाई आश्रम पर 21 जून को विश्व योग दिवस उत्साह पूर्वक मनाया गया। बड़ी संख्या में आस पास के क्षेत्रों से आये लोगों ने योग दिवस कार्यक्रम में भाग लिया। इस अवसर पर प्रतिभागियों ने जीवन तत्व साधन, तथा कठिन योग आसनों का प्रदर्शन किया। विशेष रूप से युवाओं– बालकों ने योग अभ्यास कार्यक्रम में भाग लेकर सुन्दर और सुरूचि पूर्ण ढ़ग से योग आसनों का प्रदर्शन किया।

आचार्य डॉ. दास लाल जी महाराज ने कार्यक्रम का संचालन करते हुए जीवन तत्व साधन, योग आसन, नेति–धोति आदि षट् कर्म आदि क्रियाओं का व्यवहारिक (प्रक्टीकल) प्रशिक्षण दिया। इसी श्रृंखला में श्री सिद्धगुफा संवाई आश्रम पर 15 जून से 30 जून 2017 तक विद्यार्थियों के लिए विशेष सत्र का आयोजन किया गया। इस 15 दिवसीय विशेष सत्र में विद्यार्थियों को योग क्रियाओं का अभ्यास कराया गया। बड़ी संख्या में युवाओं ने योग के विभिन्न आयामों पर जिज्ञासा पूर्वक भाग लिया। आचार्य डॉ. दासलाल जी ने सभी की जिज्ञासाओं के समाधान दिये। योग क्रियाओं के बारे में सरल रूप से समझाया।

प्रतिभागी युवाओं में से उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले लगभग 25 प्रतिभागियों को प्रशस्ति पत्र दिये गये। अन्य बेहतर प्रदर्शन करने वाले छात्रों को कापी–पेन आदि देकर सान्त्वना पुरस्कार दिये गये। इस प्रशिक्षण सत्र में सही प्रकार से योग आसन, नेति आदि क्रियाओं तथा योग के रहस्यों को सरलता तथा सहजता से समझाया गया।

यह योग प्रशिक्षण सत्र बहुत सार्थक रहा। प्रतिभागियों तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियों ने भी प्रशिक्षण कार्यक्रम को बहुत उपयोगी बताते हुए आगे भी आचार्य डॉ. दास लाल जी महाराज के निर्देशन में ऐसे प्रशिक्षण सत्रों के आयोजन हेतु अनुरोध किया।

❑❑❑

अमृत कण

नादत्ते कश्चित् पापं न चैव सुकृतं विभु:।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेक मुह्यन्ते अन्तव:।।

अर्थ– सर्व व्यापक परमात्मा न पाप ग्रहण करता है और न पुण्य। अत:जीवों का कर्मबन्धन केवल अज्ञानमात्र है, जिसके कारण सभी जीव अपने को मोहमाया में फँसा मानते हैं।।

◆ ◆ ◆

अनाचारस्तु मालिन्यमत्याचारस्तु मूर्खता।
विचाराचार संयोग: सदाचारस्य लक्षणम्।।

अर्थात् अनाचार से मनुष्य के चित्त में मलिनता होती है और आवश्यकता से अधिक आचार करना मूर्खता (या दम्भ) कहा गया है। अत: विचारपूर्वक जो आचार किया जाता है, वही सदाचार कहलाता है।

◆ ◆ ◆

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:।।

अर्थात् जिसकी परमात्मा में उत्तम भक्ति है और परमात्मा के समान ही अपने गुरु में भक्ति है, उस महात्मा को सभी पदार्थ स्पष्ट हो जाते हैं।

◆ ◆ ◆

पापेन जायते व्याधि: पापेन जायते जरा:।
पापेन जायते दैन्यं दु:ख शोको भयंकर:।।

पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है। पाप से ही दैन्य, दु:ख तथा भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

वानप्रस्थाश्रम

जब मनुष्य अपने ही प्रपंच में फंसा रहता है, तब उसका विकास हो जाता है, इसलिए गृहस्थाश्रमी व्यक्ति ने समस्त समाज को ही अपना परिवार मानना चाहिए। इसको वानप्रस्थ भी कह सकते हैं। वानप्रस्थ यानी समाज-सेवी का व्रत, विषयासक्ति से मुक्ति। विषयासक्ति अपने आप नहीं छटती। अगर मनुष्य एवं स्वयं उसका त्याग न करेगा तो वह देह खतम होने तक चिपकी रहेगी, बल्कि अगले जन्म में भी उसके पीछे आयेगी। काम, क्रोध, मोह आदि विकार मन में रखकर लोग परमेश्वर की उपासना करते हैं। लेकिन भक्ति और काम-क्रोध का मेल कैसे बठेगा। प्रकाश और अंधेरा क्या कभी इकट्ठा रहते हैं ?

– विनोवा

संस्थापक:– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा